अथ

श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितः

आत्मबोधः ।



मुम्बापुर्यां

"निर्णयसागर" यन्त्रालयाधिपतिना स्वकीये मुद्रणयन्त्रे

मुद्रयित्वा प्राकाश्यं नीतः ।

शकाब्दाः १८१२.

॥ अथ

श्रीमच्छंकराचार्यविरचितः

आत्मबोधः ।

माधवानन्दविरचितया हिंदुस्थानीभाषाटीकया समेतः ।

स च

मुम्बापुर्यां
"निर्णयसागर" यन्त्रालयाधिपतिना स्वकीये मुद्रणयन्त्रे मुद्रयित्वा प्राकाश्यं नीतः ।

शकाब्दाः १८०९ संवत् १९४३.

अथात्मबोधकी प्रस्तावना.

यह आत्मबोधनामक वेदांतप्रकरण श्रीमद्भगवच्छंकराचार्यनें मुमुक्षु पुरुषोंके उपकारार्थ अनेक प्रकारकी श्रुतिस्मृतियोंका सार लेकर आत्मस्वरूपका विचार अति सुगमतातें रचा. तिसके ऊपर अनेक विद्वानोंनें संस्कृत टीका भी बनाई, परंतु जो भाषावाले जिज्ञासु पुरुष हैं, तिनके समझनेंमें संस्कृत टीका आती नहीं, काहेतें, की वेदांत प्रकरण अति बारीक है, और वे बिचारे श्रद्धाकरिकै बहुत परिश्रम भी करते हैं, परंतु साक्षी आत्माका अति कठिनतातें बोध होता है; तो भी तिनके मनमें चिंता बनी रहती है. इस कारणतें शुद्ध अधिकारी और आत्मस्वरूपके जाननेकी अति उत्कृष्ट है इच्छा जिनकों और संसारकूपकों कारागारवत् तुच्छ मानने, तिसके भोगनके त्यागनकों यत्नपूर्वक उपाइ भी बहुत करते रहते हैं; परंतु प्रारब्धकी प्रबलतातें यत्न निष्फल हो जाते हैं, ऐसे

श्रीमद्वैश्यवंशभूषण भीपमचंद सेठ वासस्थान बोदर अति श्रद्धाभक्तिपूर्वक हमारे प्रतिनिवेदन करा, की आप हमारे अर्थ आत्मबोधप्रकरणकी भाषाटीका कृपा करिकै जगतके उपकारार्थ बना देवै तौ बहुत अच्छा है, तब हमने अति सरल और तात्पर्यरूप अर्थ प्रकाश करा है, जिसमें हरएकके समझनेमें भली प्रकारतें आवै तौ जो कोई पुरुष इस टीकाकों विचार करैंगे सो निःसंदेह परमपदकों प्राप्त होइगे, फेरि संसारके जन्ममरण इत्यादिक जो क्लेश हैं सो भली प्रकारतें निवृत्ति होइगे. काहेतें, आत्मस्वरूपके यथार्थज्ञानविना संसार समाप्त होत नहीं. यह सर्व विद्वानोंका अनुभव है. तातें उत्तम पुरुषोंकों यही योग्य है, की आत्मस्वरूपके जाननेकी इच्छा निमित्त प्रवल करै, और श्रद्धाभक्तिपूर्वक इस आत्मबोध प्रकरणको भाषाटीकासमेत नित्त विचार करै, और लेखक लोग इस हिंदुस्थानी वानीको वदलै नहीं यह हमारी उनतें प्रार्थना है इति ॥

अथ

॥ आत्मबोधः प्रारभ्यते ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ अथात्मबोधप्रकरणकी भाषाटीका लिख्यते ॥ मनहरन छन्द ॥ उदधि अपार मम रूपतें, तरंगतुल्य विधि हरि हर, आदि जे ते रूपधारी हैं। देव दैत्य पन्नग पिशाच चराचर, जे ते जहँलग जगजालमायानें पसारी है॥ सबकों आधार आप निराधार, आतमसों सत चित आनंदस्वरूपतें सो न्यारी है। साक्षी एक समरस व्यापक, आकाशवत् पूरनप्रकाश, ताकों वंदना हमारी है॥ १॥ जामें उदै अस्त नाहीं, व्यस्तहुं समस्त नाहीं, वानीका प्रवेश नाहीं, नाहीं कछु जो कहो। जीव ईश भेद नाहीं, कोई प्रतिषेध नाहीं, कोशकृत क्लेश नाहीं, कोन विधिमें गहो॥ वेदहुँ पुराण नाहीं, लक्ष्य औ अलक्ष्य नाहीं, आतम रू-

टस्थ एकरूप सदा रमि रह्यो। द्वैतहूंकों लेश नाहीं, अहं त्वहं भेद नाहीं, गुरु उपदेश नाहीं, तातें चु- प व्है रह्यों ॥ २ ॥ ऐसो चिदानंदब्रह्म, मायाकों सं- योग पाई, भूलिके स्वरूपकों सो जीव नाम धारे है। क्षीरनीरभेदवत् एकरूप भासत है, दुस्तर सो भेद जहां, धरि पचिहारे हैं ॥ जाको श्रीशंकरानंदगुरु भिन्नभिन्न करि जगउपकार, लगि वहु ग्रंथ सारे हैं। श्रुतीको प्रमाण जहां, भासै करामलक सो आत्म विचार आत्मबोध नाम चारे हैं ॥ कठिनविचार जाकों संस्कृत वानीमांहि भाषामें प्रकाश कीन सरल सुधारे हैं ॥ ३ ॥ दोहा ॥ वैश्यवंश अवतंस अतिपावन परमप्रकाश ॥ विमल विवेक विचार दृढ चिदानन्द रसवास ॥४॥ गुरुसेवारत चित्त नित धर्म निपुन गुनधाम ॥ सदा तीव्र वैराग जिहिं श्रीपमच न्द सो नाम ॥ ५ ॥ ताके हितके हेत यह भाषा भाष्य नवीन ॥ करी यथामति प्रीतियुत चिदानंद र- स लीन ॥ ६ ॥ जो याकों नित प्रीतियुत पढे सुने

नर कोई ॥ भववारिधिके दुःखसों तुरतहि पार सो होई ॥ ७ ॥

अथ वार्तिक ॥ परमदयावान् भगवान् जो हैं श्रीशंकराचार्य, सो उत्तम अधिकारियों- के अर्थ वेदपयोनिधि मथिकर ज्ञानरूपी रत्न नि- कासिके उपनिषत्, सूत्र औ गीता ये तीनि प्र स्थान जो हैं ध्येयब्रह्मके निरनै, अर्थात् जीव- ब्रह्मकी एकता, ताके सिद्धि करनेवाले तिनके विचार करनेकों जो समर्थ नहीं, ऐसे मंदबुद्धि मुमुक्षु पुरुषनके ऊपर अनुग्रहके अर्थ सर्व वेदांत- सारसंग्रह यह परम रत्नरूप आत्मबोधप्रकरणनाम ग्रंथ करते भये हैं.

ॐ तपोभिः क्षीणपापानां शांता- नां वीतरागिणाम्॥ मुमुक्षूणामपे- क्षोऽयमात्मबोधो विधीयते ॥ १ ॥

तपोभिरिति ॥ तप कहे कृच्छ्रचांद्रायण, नि-

त्य, नैमित्तिक, उपासना आदि अनुष्ठानरूप तपकरिके क्षीण भये हैं पाप जिनके, अथवा चक्षु आदि इंद्रियनिग्रहरूप तपकरिके क्षीण भये हैं पाप जिनके; तात्पर्य यह– रागद्वेषादि अंतःकरणके दोष दूर भये हैं जिन पुरुषनके, और 'शांतानां' कहे छोभरहित; वीतराग कहे इस लोक और परलोकके भोगनविषे इच्छारहित; मुमुक्षु कहिये जन्म, जरा, मरण, संसाररूपी ग्रंथिछेदन करनेकी अभिलाषावाले ऐसे जो हैं मुमुक्षु, तिन पुरुषनके हितके अर्थ यह आत्मबोधप्रकरण अभिधीयते कहे कहते हैं ॥ १ ॥

शंका–तपस्या और मंत्रनका जप और यज्ञादिक कर्म और जोग आदि अनेक प्रकारके साधनकरिके मोक्षका बोधन, अर्थात् सिद्धि कहा है. तुम मोक्षका साधन आत्माका ज्ञान कैसे कहते हो ?

उत्तर–आत्मा अर्थात् अपने स्वरूपका जो

बोध है, सोई साक्षात् मोक्षका कारण है; ऐसे श्रुतिप्रमाण सिद्धि है; और कर्म, उपासना शुद्धिका कारण है, मोक्षके नहीं. इसतें हम आत्मबोधकों मोक्षका साधन कहते हैं. तिसका दृष्टांतः–

बोधोऽन्यसाधनेभ्यो हि साक्षान्मोक्षैकसाधनम् ॥ पाकस्य वह्निवज्ज्ञानं विना मोक्षो न सिद्ध्यति ॥ २॥

बोध इति ॥ तप, मंत्र और कर्मयोगादिक जो नानाप्रकारके कर्म हैं, सो चित्तकी शुद्धि और एकाग्रताके अर्थ हैं; और परंपरा करिके आत्मज्ञानसें विना मोक्षकी सिद्धि होती नहीं. तातें, मोक्षका साधन आत्माका बोध है, कर्म नहीं. दृष्टांत–पाकस्येति॥जैसे लोकविषे काष्ठ, जल, अन्नादिक भोजनसिद्धिके अर्थ संपूर्ण सामग्री यथार्थ इकठ्ठा है परंतु अग्निविना भोजनकी सिद्धि होती नहीं, तैसे अनेकप्रकारके जो हैं कर्म

और उपासना सो कोटिन जन्म करता रहै, परंतु ज्ञानविना मोक्ष होती नहीं॥ तथा च श्रुतिः॥ "ज्ञानादेव तु कैवल्यं। ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः" इति श्रुतेः॥ इसका अर्थ ज्ञानहीतें मुक्ति होती है, और ज्ञानतें रहितकों मुक्ति नहीं; और आत्मादेवकों जानेतें सर्व पाशनकी हानि होती है. तात्पर्य यह, संपूर्ण बंधनोंतें छूटिके पुरुष परमपदकों प्राप्त होता है. ऐसे श्रुति भी ज्ञानविना मोक्षकों उपासनाकर्मतें निषेध करतीहै॥ २॥

शंका—कर्मनकी भी विचित्र शक्ति है, और जनकादिक कर्महीद्वारा संसिद्धिकों प्राप्त भये हैं; तातें, कर्मनतेंही अज्ञानकी नाश होकर मुक्ति होती है; तुम ज्ञानतें अज्ञानकी नाश कैसे कहते हो?

उत्तर— जो जिसका विरोधी नहीं होता, सो तिसके नाश करनेकों भी समर्थ नहीं होता, और संसिद्धिशब्दका अर्थ अंतःकरणकी शुद्धि परता है, मोक्षका कारण नहीं.

अविरोधितया कर्म नाविद्यां वि-
निवर्तयेत् ॥ विद्याऽविद्यां निह-
न्त्येव तेजस्तिमिरसंघवत् ॥ ३ ॥

अविरोधितयेति ॥ कर्म और अज्ञानका अविरोध है, अर्थ यह—कर्म और अज्ञानका परस्पर विरोध नहीं; काहेतें की, दोऊ जड हैं; इस कारणतें कर्म अविद्या कहे,अज्ञानकी निवृत्ति करनेकों समर्थ नहीं; तातें में नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तिस्वरूप ब्रह्म हूं; इस प्रकारकी विद्या कहे ब्रह्म और आत्माकी एकताका ज्ञान; सो मैं मनुष्य हूं, दुःखी हूं, सुखी हूं, मूर्ख हूं ऐसा जो है अविद्या कहे अज्ञान तिसकी नाश करनेकों समर्थ है- तेज इति ॥ जैसे तेज जो हैं सूर्यादिकनका प्रकाश सो तिमिर कहे अंधकार को शीघ्रहीं नाश करता है, तैसे आत्मज्ञानके प्रकाश होतहीं संपूर्ण अज्ञानकी नाश होजाती है ३

शंका—प्रतिशरीरनमें आत्मा परिच्छिन्न कहे

नाशमान् ,अर्थात् जन्मतेमें मरा हुवा प्रतीत होता है, तो जीवब्रह्मकी एकताके ज्ञानतें अज्ञानकी निवृत्ति, कैसे बनती है ?

उत्तर–अज्ञानकरिकें आत्मा परिच्छिन्नवत् प्रतीत होता है, तिस अज्ञानके नाश होनेतें अपरिच्छिन्नवत् आपहीं प्रकाशमान् होता है यह कहते हैं.

परिच्छिन्न इवाज्ञानात्तन्नाशे सति केवलः ॥ स्वयं प्रकाशते ह्यात्मा मेघापायेंऽशुमानिव ॥ ४ ॥

परिच्छिन्न इति ॥ सर्वत्र परिपूर्ण अद्वितीय आत्मा अज्ञानकल्पित देवमनुष्यादि उंचनीच शरीरके अध्यास, अर्थात् भ्रमकरिकें परिच्छिन्नवत् प्रतीत होता; सो जब तत्त्वमसि इत्यादि श्रुतिके महावाक्यनद्वारा जब आत्मा और ब्रह्मकी एकताका ज्ञान होता है, तब अज्ञानतें जो मिथ्या अध्यासका आरोप है तिसकी नाश होनेतें आ-

त्माके बल कहे सजातीय विजातीय स्वगतभेदतें रहित स्वप्रकाश प्रतीत होता है. ताका दृष्टांत— मेघापायेति॥ मेघकृत् जो है आवरण, तिसके नाश होनेतें जैसे सूर्य आपहीं प्रकाशमान् होता है तैसे अज्ञानके नाश होनेतें आत्मा आपही प्रकाशमान् होता है ॥ ४ ॥

शंका—अज्ञानके नाशतें आत्माकी केवलताका जो तुम प्रतिपादन करते हो सो नहीं संभवती. काहेतें की, अज्ञानके नाश करनेवाली वृत्ति ज्ञानकरिके द्वैतकी प्राप्ति होती है.

उत्तर—अज्ञानकरिके जीव मलिन है वास्तव आत्मा शुद्ध है यह कहते हैं.

अज्ञानकलुषं जीवं ज्ञानाभ्यासा-
द्धि निर्मलम् ॥ कृत्वा ज्ञानं स्वयं
नश्येज्जलं कतकरेणुवत् ॥ ५ ॥

अज्ञानेति ॥ अकर्त्ता, अभोक्ता जो है सच्चिदानंदस्वरूप आत्मा ब्रह्म, सो अज्ञानकरिकै मैं कर्त्ता हुं, मैं भोक्ता हुं, मैं जीव हुं ऐसे भ्रमकरिकै अपनेकों मानता है; तातें, कलुष कहे मलिन होगया है; सो मैं अकर्त्ता, अभोक्ता, सच्चिदानन्द, कूटस्थ, असंग साक्षी ब्रह्म हुं, ऐसे ज्ञानकरिकै अपने स्वरूपका जब बहुतकाल अभ्यास करता है तब आपही निर्मल कहे अज्ञानरूपी मायामलतें रहित अपने स्वरूपविषे स्थित होता है. जैसे कतकरेणु जो है निर्मली बूटि सो जलकों निर्मल करि देती है; तैसे ज्ञान आत्माकों आपहीं निर्मल करि देता है ॥ ५ ॥

शंका–अपरोक्ष साक्षात् जो प्रतीत होता है संसार, सो भी सत्य है; तुम आत्माकी केवलता कहे अद्वैतता कैसे कहते हो?

उत्तर–मिथ्या जगतकरिकै आत्माकी अद्वै-

तताकी हानि नहीं होती,सो स्वप्नके दृष्टांततें संसारकी मिथ्यापनेकों सिद्धि करते हैं.

संसारः स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादिसंकुलः ॥ स्वकाले सत्यवद्भाति प्रबोधेऽसत्यवद्भवेत् ॥ ६ ॥

संसार इति ॥ रागद्वेषादि करिकै प्राप्त यह संसार स्वप्नकी तुल्य मिथ्या है, तैसे स्वप्नके पदार्थ निद्रासमयमें सत्यवत प्रतीत होते हैं, और प्रबोध कहे जाग्रत् अवस्थाविषे आपहीं असत्य हो जाते हैं, तैसे यह संसार अज्ञानकालमें सत्यवत् प्रतीत होता है; और प्रबोध कहे आत्म और ब्रह्मकी एकताके ज्ञानकरिकै संसार आपहीं मिथ्या हो जाता है. तातें संसारकरिकै आत्माकी अद्वैतताकी हानि नहीं होती ॥ ६ ॥

जगतकों अधिष्ठान कूटस्थ साक्षी आत्माका जबतक ज्ञान अर्थात् जानते नहीं, तबतक कल्पित जगत् सत्यवत् प्रतीत होता है.

तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिकारजतं यथा ॥ यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्वयम् ॥ ७ ॥

तावदिति ॥ जबतक नीलपृष्ठ त्रिकोणादिछक्त सीपाका रूप यथार्थ नहीं जाना जाता, तबतक कल्पित रजत कहे चांदि सत्यवत् प्रतीत होती है; तैसे सच्चिदानंद अद्वैतब्रह्मका स्वरूप जबतक यथार्थ नहीं जानते- तात्पर्य यह, जबतक साक्षात्कार नहीं अनुभव होता, तबतक मिथ्याभूत प्रपंच भ्रम करिके सत्यवत् प्रतीत होता है॥७॥

तातें संपूर्ण प्रपंच ब्रह्मविषे कल्पित है तिसकों दृष्टांतकरिके दृढ करते हैं.

सच्चिदात्मन्यनुस्यूते नित्ये विष्णौ प्रकल्पिताः ॥ व्यक्तयो विविधाः सर्वा हाटके कटकादिवत् ॥ ८ ॥

सच्चिदिति ॥ अस्तिभातिप्रियरूप आत्मा-

विषे और नामरूपात्मक जगतविषे, अनुस्यूत कहे जैसे मणिकोंविषे सूत्र, और सूत्रविषे मणिका ऐसे परस्पर ओतप्रोत कहे व्यापक हैं और नित्य कहे तीनि कालविषे बाधरहित विष्णु कहे चराचरमें व्यापक और सर्वका उपादानभूत ब्रह्म तिसविषे, 'व्यक्तयः' कहे नानाप्रकारकी देव, मनुष्य, पशु,कीट,पतंग आदिकी मूर्त्ति नामरूप जगत मिथ्या मायानें कल्पे हैं; जैसे हाटक कहे सुवर्ण तिसविषे कटक कुण्डलादिक मिथ्या नामरूप कल्पे हैं. तातें, वाचारंभणमात्रहीं ब्रह्मविषे जगतकी मिथ्या कल्पना है, वास्तव जगत अर्थात् नामरूप विकाररहित आत्मा शुद्ध है ॥ ८ ॥

शंका–प्रपंचकी मिथ्यापना भी है, और जीवभेद सत्य है, तो प्रपंचके अधिष्ठानरूप परमात्माकों तुम अद्वितीय कैसे कहते हो ?

उत्तर–उपाधिकरिके आत्माविषे भेद प्रतीत

होता है, वास्तव आत्मा अद्वितीय है और भेदक-
ल्पित है.

यथाकाशो हृषीकेशो नानोपा-
धिगतो विभुः ॥ तद्भेदाद्भिन्नव-
द्भाति तन्नाशे सति केवलः ॥ ९ ॥

यथाकाश इति ॥ जैसे व्यापक आकाश घटमठआदि नामरूप उपाधिनमें प्राप्त होकर तिन उपाधियोंके भेदकरिके घटाकाश मठाकाश-वत् आकाशकी प्रतीत होती है, तैसे व्यापक ब्रह्म हृषीकेश कहे सर्व इंद्रिय अंतःकरणादिरूप उपाधिनमें ढका हुवा- तात्पर्य यह, अंतःकरणविषे प्रतिबिंबभावकों प्राप्त तिसकरिके आत्माविषे भेद, अर्थात् भिन्नवत् प्रतीत होता है, तिन उपाधिनके नाश होनेतें आत्मा एक अद्वैत प्रतीत होता है. तात्पर्य यह, असंग अद्वितीय आत्माविषे वास्तव

भेद कोई है नहीं: उपाधिकरिके जीव ईश्वर भेद भिन्नवत् प्रतीत होता है; जैसे घट मठ उपाधिनके नाश होनेतें आकाश एकवत् प्रतीत होता है ॥९॥

शंका–मैं ब्राह्मण हूं, मैं ब्रह्मचारी हूं, मैं संन्यासी हूं, इस प्रकार जाति, वर्ण, आश्रम आदि नानाप्रकारके धर्मयुक्त आत्मा प्रतीत होताहै, तो असंग कैसे कहते हो?

उत्तर–जाति, वर्ण, आश्रम आदि धर्म असंग आत्माविषे कल्पित हैं, वास्तव है नहीं.

नानोपाधिवशादेव जातिनामाश्रमादयः ॥ आत्मन्यारोपितास्तोये रसवर्णादिभेदवत् ॥ १० ॥

नानोपाधीति ॥ प्रथम कही हुई उपाधिकी तरह देहआदि अनेक उपाधिनकरिके आत्मा और देहकी एकरूपताके अध्यास, अर्थात् भ्रमकरिके तिस देहके जो हैं धर्म, जाति, आश्रम

आदिक मिथ्या, सो आत्माविषे आरोप करा है, सो अविद्या अर्थात् अज्ञानकल्पित हैं, वास्तव कछु भी सत्य नहीं. जैसे स्वभाव करके जल मधुर और शुभ्र है; परंतु जैसे जैसे कटु कषाय लवणादिक रक्त, पीत, स्याम रंग मिलाया, तैसे तैसे जल प्रतीत होता है. तैसे जाति, वर्ण, आश्रमके साथ मिलिकर आत्मा जाति वर्ण आश्रम प्रतीत होता है. स्वाभाविक कछु भी आत्माविषे है नहीं॥१०॥

अब अविद्याकल्पित जो तीनि उपाधि हैं तिनका स्वरूप कहते हैं.

पंचीकृतमहाभूतसंभवं कर्मसंचितम् ॥ शरीरं सुखदुःखानां भोगायतनमुच्यते ॥ ११ ॥

पंचीकृतेति ॥ पंचीकृत पंचमहाभूत जो हैं, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, नामरूप जगतके परिणामी अर्थात् उपादानकारण तिनतें

है संभव कहे उत्पत्ति जिसकी सो प्रारब्धकर्मरचित आत्माके सुखदुःख भोगनेका आयतन कहे स्थान है. तिसका नाम स्थूल शरीर है. सो आत्माकी प्रथम उपाधि मुख्य है ॥ ११ ॥

अब सूक्ष्मशरीरकी उपाधि कहते हैं.

पंचप्राणमनोबुद्धिदशेंद्रियसमन्वितम् ॥ अपंचीकृतभूतोत्थं सूक्ष्मांगं भोगसाधनम् ॥ १२ ॥

पंचेति॥ पंचप्राण कहे प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान; और मन कहें संकल्पविकल्परूप अंतःकरणकी वृत्ति; और बुद्धि कहे निश्चयरूप वृत्ति; और दशइंद्रि श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, नासिका, और जिव्हा ये पंच ज्ञानइंद्रि; और वानी, हाथ, पाद, गुदा, लिंग, ये पंच कर्मइंद्रि ऐसे ऐसे सब मिलिकर सत्तरह वस्तुसंयुक्त अपंचीकृत पंचमहा सूक्ष्मभूत उपादानकारणतें उत्थं कहे उत्पत्ति सो

आत्माके सुखदुःखं भोगनेका साधन जो सूक्ष्मांग कहे लिंगशरीर यह आत्माकी दूसरी उपाधि हैं १२

अब तीसरी कारणशरीरकी उपाधि कहते हैं.

अनाद्यविद्यानिर्वाच्या कारणोपाधिरुच्यते ॥ उपाधित्रितयादन्यमात्मानमवधारयेत् ॥ १३ ॥

अनादीति ॥ अनिर्वचनीय तत्त्वज्ञानतें रहित जगतकी उत्पत्ति करनेको समर्थ जो सत्य असत्य कही जाइ नहीं. काहेतें, जो मायाकों सत्य कहो तो ज्ञानकरिके नष्ट हो जाती है, और असत्य कहे तो असत्यतें जगतकी उत्पत्ति संभवे नहीं. तातें माया अनिर्वचनीय है, सो अनादि कहे उत्पत्तिरहित समष्टि व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म शरीरकी उत्पत्ति करनेको कारण कहे बीज है सो यह आत्माकी तीसरी उपाधि है. अब तीनि उपाधि निरूपण करनेका प्रयोजन कहते हैं. 'उ-

पाधीति' कहे जो स्थूल सूक्ष्म कारण तीनि उपाधि हैं तिनतें आत्माकों अन्य कहे इनतें जुदा इनका साक्षी अर्थात् देखनेवाला अपने स्वरूपको निश्चय करना की मैं असंग कूटस्थ साक्षी सच्चिदानंद ब्रह्म इनका देखनेवाला इनतें भिन्न हूं; जैसे घटका देखनेवाला घटतें भिन्न होता है तैसे मैं इनतें भिन्न हूं इति ॥ १२ ॥

शंका– उपाधि तीनितें भिन्न आत्माकी सच्चिदानंदरूपता जो तुम कहते हौ सो नहीं संभवती. काहेतें की, आत्मा अन्नमयादि कोशरूप प्रतीत होता है. और श्रुतिभी कहती है सो एक पुरुष अन्नरसमय है इस कारणतें यह प्रतीत होता है की कोशनतें भिन्न आत्मा है नहीं, कोशही आत्मा है.

उत्तर–आत्माकी अन्नमयादि कोशरूप जो प्रतीत है सो देहकी और आत्माकी एकरू-

पताके भ्रमकरिकै प्रतीत होती है; वास्तव आ-
त्मा पंचकोशतें भिन्न है सो दृष्टांतकरिकै क-
हते हैं.

**पंचकोशादियोगेन तत्तन्मय इ-
व स्थितः ॥ शुद्धात्मा नीलवस्त्रा-
दियोगेन स्फटिको यथा ॥ १४ ॥**

पंचकोशेति ॥ अन्नरसतें जो होता है औ-
र अन्नहीतें बढता है, और अन्नरूप पृथिवीमें
लय हो जाता है, सो अन्नमय कोश है; और पं-
च कर्मइंद्रि और पंच प्राण मिलिकै प्राणमय
कोश होता है; पंच ज्ञानइंद्रि और मन मिलिकै
मनोमय कोश होता है और पंच ज्ञानइंद्रि और
बुद्धि मिलिकै विज्ञानमय कोश होता है; और का-
रणशरीरभूत अविद्या मलिनसत्वप्रधान प्रिया-
दिवृत्तिसहित आनंदमय कोश होता है, सो ये
अन्नमयादि जो पंचकोश हैं, तिनकरिकै आत्मा-

की सच्चिदानन्दतादि रूपता आच्छादित अर्थात् ढकी हुई है, श्लोकविषे आदिपद है तिसँतें स्थूलता, कृशता, क्षुधा, तृषा आदिक धर्मोंकों लेना तिनके जोग करिके मिथ्या तद्रूपता अर्थात् कोश और आत्माकी एकरूपताके भ्रमकरिकै आत्मा कोशरूप प्रतीत होता है. वास्तव आत्मा शुद्ध है; पर जिस जिस कोशके साथ अत्माका व्यवहार होता है सो सो कोशरूप आत्मा प्रतीत होता है. जैसे मैं मनुष्य हूं, मैं मोटा हूं, मैं पतला हूं, ऐसे अन्नमय कोशरूप प्रतीत होता है; और मैं भूखा हूं, मैं प्यासा हूं; ऐसे प्राणमय कोश रूप प्रतीत होता है; देह मेरी है,घर पुत्रादि मेरे हैं, मैं संसारी हूं,ऐसे मनोमय कोशरूप प्रतीत होता है; मैं ज्ञानवान हूं,मैं मूर्ख हूं, ऐसे विज्ञानमय कोशरूप प्रतीत होता है; अब मैं सुखी हूं ऐसे आनंदमय कोशरूप प्रतीत होता है, इस प्रकार अन्नमयादि कोशनके मिथ्या धर्म आत्माविषे भ्रमकरिकै प-

तीत होते हैं, स्वाभाविक आत्माविषे कोई धर्म है नहीं; और श्रुतिनें जो आत्माकी अन्नमयादिरूपता कही है सो अरुंधतीके न्यायकरिकें सूक्ष्मवस्तुके दिखाने विषे तात्पर्य है; काहेतें की, पंचकोशनकी उपाधीतें आत्माकों जीवरूपता है, और श्रुतिका यह तात्पर्य नहीं है की, आत्मा अन्नमयादिक पंच कोश है, और आत्मा एक है, कोश अनेक हैं, कोश उत्पत्तिविनाशवाले हैं, आत्मा अविनाशी है, कोश धर्मवाले हैं, आत्मा संपूर्ण धर्मनतें रहित है, तो आत्मा कोश कैसे हो सकता है? सो दृष्टांततें कहते हैं. जैसे स्वभावकरिकें स्फटिक शुद्ध है परंतु नीलपीतादि वस्त्रके योगकरिकें नीला,पीला प्रतीत होता है, स्वाभाविक स्फटिक नील पीत हैं नहीं ॥ १४ ॥

कोश और आत्माकी एकरूपताका जो अभ्यास तिस अभ्यास करिकें आत्मा कोशरूप प्रतीत होता है, तिन कोशनतें आत्माका विवेचन

अर्थात् भिन्न करे तौ आत्माविषे कोई भेद है नहीं तिसकों दृष्टांतकरिकै कहते हैं.

वपुस्तुषादिभिः कोशैर्युक्तं युक्त्यावघाततः ॥ आत्मानमंतरं शुद्धं विविच्यात्तंडुलं यथा ॥ १९ ॥

वपुस्तुषादिभिरिति॥ जैसे चाउरका स्वरूप भीतर शुद्ध अरु शुक्लरूप है सो भूसीकरिकै ढंका हुवा भूसीरूप प्रतीत होता है, तिसको युक्तीतें कूटिकै भूसीते जुदा करि लेते हैं, तैसे अन्नमयादि कोशनको युक्तिरूप विचारतें तिन कोशनके भीतर जो शुद्ध आत्मा है तिसको जुदा करि लेते हैं, सो विचारका स्वरूप कहते हैं. अन्नमय कोश आत्मा नहीं है, काहेतें पंचभूतनका कार्य है घटादिवत् और जो अन्नमय कोशको आत्मा मानो तौ वर्तमान शरीरविषे जो सुखदुःख भोगते हैं सो विना कर्म करेहीं फल भोगने परे,

अरु इस शरीरकरिके जो पुण्यपापरूप कर्म ति-
नका फल विना भोगनेतेंहीं नाश भये अरु शरीर
अवश्य नाश होता है; तातें अकृतनाशकृताभ्या-
गम दोष होता है, तिसका परिहार किसीतेंभी हो-
ता नहीं, और जन्मतें पहिले यह शरीर था नहीं,
और मरणतें पीछे भी रहेगा नहीं, तातें किसी प्र-
माणकरिकै आत्मा अन्नमयकोश सिद्ध होता
नहीं और प्राणमय कोश भी आत्मा नहीं. काहेतें
की, प्राणमयकोश भी अपंचीकृत पंचमहाभूतनका
कार्य है, औरजड है, स्थूलकी तरह और मनोमयको-
श भी आत्मा नही. काहेतें की, मन भी संकल्पवि-
कल्पवाला है, आत्माविषे संकल्पविकल्प है नहीं;
और मन सतोगुणका कार्य है आत्मा तो सतोगु-
णका कार्य नहीं और विज्ञानमय कोशभी आत्मा
नहीं;काहेतें, विज्ञानमय कोशभीं सतोगुणका का-
र्य है, और परिणामी है, आत्मा परिणामी है नहीं,
और आनंदमयकोशभी आत्मा नहीं-काहेतें अवि-

द्यारूप वृत्तिवाला और जड है, घटादिकी तरह और आनंदमयकोश मलिनसत्व प्रियादि वृत्ति वाला है, आत्मा अविद्याकी वृत्तिवाला नहीं और जड नहीं ऐसे जो पंचकोश हैं तिनतें जुदा प्रत्यगात्मा जो है परमात्मा सच्चिदानंदस्वरूप साक्षीकी निश्चै करना ॥ १५ ॥

शंका–आत्माको ब्रह्मरूपता होनेतें व्यापकता करिके सर्वत्र प्रतीत होना चाहिये, और तुम भी कहते हो की, आत्मा सर्वत्र व्यापक है, परंतु सर्वत्र प्रतीत कहे नहीं होता ॥

सदा सर्वगतोऽप्यात्मा न सर्वत्रावभासते ॥ बुद्धावेवावभासेत स्वच्छेषु प्रतिबिंबवत् ॥ १६ ॥

उत्तर–**सदेति** ॥ आत्मा सर्वगत भी है अरु सर्वत्र व्यापकरूप स्थित भी है, परंतु सर्वत्र प्रतीत नहीं होता और अस्तिभाति प्रिय-

रूपकरिके सदा सर्वत्र घटादि-पदार्थनविषे प्रतीत भी होता है. तात्पर्य यह; अनुभवरूपता कहे सर्वका अनुभव अर्थात् जाननेवाला विशेषिरूप करिके बुद्धिविषे भली-प्रकार प्रतीत होता है; काहेतें, बुद्धि सतोगुणका कार्य होनेतें शुद्ध है; जैसे घट, भीति, कांच आदिक सर्व मृत्तिकाके कार्य हैं परंतु कांच शुद्ध है इस कारणतें दर्पणविषे प्रतिबिंब प्रतीत होता है; जैसे सूर्य अपनी किरणद्वारा सर्वत्र व्यापक है परंतु घटादिविषे प्रतीत नहीं होता और जलादिकोंविषे प्रतीत होता है, तैसे देहादि पदार्थ रजतमका कार्य हैं तिनविषे आत्मा प्रतीत नहीं होता इति ॥१६॥

अब देहइंद्रि आदि संघातविषे आत्मा वर्तमान भी है, परंतु तिनतें जुदा है तिसको राजाके दृष्टांत करिके दृढ करते हैं ॥

देहेंद्रियमनोबुद्धिप्रकृतिभ्यो विलक्षणम् ॥ तद्वृत्तिसाक्षिणं विंद्यादात्मानं राजवत्सदा ॥ १७ ॥

देहेति ॥ देहइंद्रियादि संघातविषे वर्तमान आत्माको देह, इंद्रि, मन, बुद्धि जो है प्रकृति कहे मायाके कार्य जड परिणामी और दृश्य तिनतें जुदा चैतन्यस्वरूप परिणामरहित अदृश्यस्वरूप तिन देहादिकी जैसे बालकादि अवस्था वृत्ति और रूपरसादि विषय आकारको नेत्रादि वृत्ति करि जानना और संकल्पविकल्पात्मक मनकी वृत्ति, और निश्चयात्मक बुद्धिकी वृत्ति, और आकाशादि आकार परिणामरूप मायावृत्ति, तिन सर्ववृत्तियोंका साक्षी आत्माकों भिन्न जानना; जैसे अपनी सभाविषे राजा संपूर्ण सभावाले पुरुषका साक्षी प्रेरक आप तिनतें जुदा अर्थात् तेजःपुंज प्रताप आदिक गुणयुक्त सभावालोंतें भिन्न ही है ॥१७॥

शंका–आत्माकी साक्षीरूपताका जो ज्ञान तुम कहते हो सो बने नहीं. काहेतें की, संघातविषे आत्मा व्यवहारवाला प्रतीत होता है और साक्षी साक्ष्यतें भिन्न होता है.

उत्तर–अज्ञानियोंको भ्रमकरिके आत्मा व्यापारी प्रतीत होता है वास्तव आत्माविषे कोई व्यापार नहीं तिसकों दृष्टांतकरिकें कहते हैं ॥

व्यापृतेष्विंद्रियेष्वात्मा व्यापारीवाविवेकिनाम् ॥ दृश्यतेऽभ्रेषु धावत्सु धावन्निव यथा शशी ॥ १८ ॥

व्यापृतेष्विति ॥ नेत्रआदि इंद्रियोंविषे अपना अपना जो इंद्रियोंका व्यवहार है सो आत्माका है, अर्थात् आत्माहीं व्यवहार करनेवाला है, ऐसे अविवेकी पुरुष जो गुरुशास्त्रादि उपदेशरहित मूर्ख हैं सो आत्माको मानते हैं. और तत्त्ववेत्ता नहीं मानते. जैसे आकाशविषे वायुके वेगतें

वक्र दौरते हैं. तिनविषे मूर्ख चंद्रमाकों दौरता मानते हैं की चंद्रमा दौरता है ॥ १८ ॥

शंका–देहइंद्री आदिक जड पदार्थनको तुम व्यापारी कहते हो तौ देहइंद्रियादिकोंको चैतन्यभी मानना चाहिये और चैतन्यता अंगीकार करोगे तौ देह इंद्रियादिकोंको आत्मता कैसे न होइगी ? तात्पर्य यह आत्मता अवश्य माननी योग्य है ॥

उत्तर–चैतन्यआत्माके आश्रय देहइंद्रि अपने अपने व्यवहारविषे वर्तती हैं, वास्तव देहइंद्रि चैतन्य नहीं,

आत्मचैतन्यमाश्रित्य देहेन्द्रियमनोधियः ॥ स्वकीयार्थेषु वर्तंते सूर्यालोकं यथा जनाः ॥ १९ ॥

आत्मचैतन्यमिति ॥ चैतन्यस्वरूप जो आत्मा है, तिसके आश्रय देहइंद्रियादिक अपने

अपने अर्थविषे वर्तती अर्थात् व्यवहार करती हैं. जैसे लोकविषे संपूर्ण भोग सूर्यके प्रकाशके आश्रय अपने अपने व्यवहारोंविषे वर्त्तते है, तातें देहइंद्रि आदिक स्वतें चैतन्य नहीं इसकारणतें तिनको आत्मता नहीं संभवती इति ॥ १९ ॥

शंका–आत्मा चैतन्यरूप तो है, परंतु मैं जन्मता हूं, मैं मरता हूं, मैं बालक हूं, मैं जवान हूं, मैं वृद्ध हूं, मैं काणा हूं, मैं बधिर हूं, मैं देखता हूं, मैं सुनता हूं, ऐसे व्यवहार आत्मविषे प्रतीत होते हैं, तातें आत्मा जन्ममृत्युवाला संभवता है ॥

उत्तर–जन्ममृत्युतें आदि लेकर देहइंद्रियादिकके धर्म अविवेककरिकें आत्माविषे आरोप करते हैं अपने अज्ञानतें वास्तव देह इंद्रियादिक धर्मनतें आत्मा रहित हैं तिसकों दृष्टांत करिकें दृढ करते हैं ॥

देहेंद्रियगुणान्कर्माण्यमले सच्चि-
दात्मनि ॥ अध्यस्यंत्यविवेकेन
गगने नीलिमादिवत् ॥ २० ॥

देहेंद्रियेति ॥ देह अरु इंद्रिनके जो गुण और अंध बधिरादि धर्म, और गमनवचनादि कर्म, सो अमल कहे मायामलरहित अर्थात् अज्ञानके जो हैं कार्य देहइंद्रि नामरूप संसारमल तिसतें रहित सत चित् आनंदस्वरूप आत्माविषे मूढ अविवेक करिकै मिथ्या आरोप करते हैं वास्तव आत्मा विषे जन्ममरणादि कोई धर्म है नहीं. जैसे रूपरहित आकाशविषे मूढ अविवेक करिकै नीलपीतादि रंगनका आरोप करते हैं॥२०॥

शंका—देह इंद्रियादिकके जन्मादिक धर्म आत्मा विषे मति होउ. परंतु मैं कर्ता हूं, मैं भोक्ता हूं, मैं पुन्यमान हूं, मैं पापी हूं, मैं सुखी हूं, मैं दुःखी हूं, यह निरंतर प्रतीत होती है. तातें

आत्मा कर्ता भोक्ता तो है, और वैशेषिक जो हैं काणादके-मतवाले तिननें आत्माकों कर्ता भोक्ता अंगीकार भी करा है ॥

उत्तर–कर्ता भोक्ता इत्यादि जो धर्म हैं सो अंतःकरणके हैं, सो अंतःकरण और आत्माकी एकरूपताके अध्यास अर्थात् भ्रमकरिकें आत्मा-विषे आरोप हैं तिसको दृष्टांत करिकें कहते हैं.

अज्ञानान्मानसोपाधेः कर्तृत्वा-
दीनि चात्मनि ॥ कल्प्यंतेऽबुगते
चन्द्रे चलनादिर्यथांभसः ॥ २१ ॥

अज्ञानादिति ॥ मनकी जो है उपाधि कर्तृत्व भोक्तृत्व आदिक धर्म तिनकरिकें अज्ञानतें आत्माकी सच्चिदानंदरूपता ढकी हुई है इसकार-णनें आत्माका यथार्थ स्वरूप ना जानिकें वैशेषि-कादि मूर्खता करिकें सच्चिदानंदस्वरूप आत्मावि-षे कल्पते है. जैसे चलनादिकजोजलके धर्म हैं, जो

जलविषे प्रतिबिंबभावकों प्राप्त चंद्रमाविषे भोग मूर्खतातें कल्पते हैं ॥ २१ ॥

अब राग इच्छादिक जो अंतःकरणके धर्म हैं, सो अज्ञानकरिकै आत्माविषे कल्पते हैं, सो अन्वयव्यतिरेक युक्तिकरिकै कहते हैं.

रागेच्छासुखदुःखादि बुद्धौ सत्यां प्रवर्तते ॥ सुषुप्तौ नास्ति तन्नाशे तस्माद्बुद्धेस्तु नात्मनः २२

रागेच्छा इति ॥ राग कहे विषयोंविषे विशेष अभिलाष इच्छा कहे सामान्य अभिलाष, और सुखदुःखादि कर्तृत्व भोक्तृत्व सर्व धर्म जाग्रत और स्वप्न अवस्थाविषे बुद्धी वर्तती है, यह अन्वय है, और सुषुप्ति अवस्थाविषे बुद्धी अपने कारणरूप अज्ञानविषे लय होजाती है; तब रागादि धर्म कोई भी प्रतीत होते नहीं, यह व्यतिरेक

हैं. तिस कारणतें रागादि धर्म बुद्धीके हैं. आत्मा- के नहीं,ऐसे निश्चय करना इति ॥ २२ ॥

प्रश्न—जब रागादि आत्माके स्वभाव नहीं हैं, तो आत्माका स्वभाव कैसा है, यह कृपा करिके कहो.

उत्तर—आत्मका स्वभाव दृष्टांतकरिके कहते हैं.

प्रकाशोऽर्कस्य तोयस्य शैत्यम-
ग्नेर्यथोष्णता ॥ स्वभावः सच्चिदा-
नंदनित्यमलतात्मनः ॥ २३ ॥

प्रकाश इति ॥ अर्क कहे सूर्यका जैसे प्रकाश स्वभाव अर्थात् स्वरूप है, जलका शीतलस्वरूप है, और जैसे अग्निका उष्णस्वभाव अर्थात् स्वरूप है; तैसे आत्माका सत् चित् आनंद नित्य निर्मलस्वभाव अर्थात् स्वरूप है. इति ॥ २३ ॥

शंका—मैं जानता हूं, मैं सुखी हूं, ऐसे ज्ञा-

न और सुखकी आश्रयता आत्माकी प्रतीत होती है, तो तुम निर्विकार सच्चिदानंदस्वरूप कैसे कहते हो ?

आत्मनः सच्चिदंशश्च बुद्धेर्वृत्ति-रिति द्वयम् ॥ संयोज्य चाविवेके-न जानामीति प्रवर्तते ॥ २४ ॥

उत्तर–आत्मन इति ॥प्रत्यगात्माका जो है सत् चित् अंश अर्थात् बुद्धीकी वृत्तिविषे आत्माकी आभास कहे छाया और अज्ञानस्वरूप आनंदका अंश जो है बुद्धिकी वृत्ती तिन दोनोंकों एकमें मिलाइके अविवेकतें मैं जानता हूं, मैं सुखी हूं, ऐसे जीव मानता है और वास्तव आत्मा असंग सर्व संबंधरहित है, जानना सुनना सुखदुःखादि असंग आत्माविषे किसी प्रकारतें बने हैं नहीं और ज्ञान सुखादि आकार वृत्तिरूप परिणाम बुद्धिका है- सो ज्ञान सुखादि आश्रयता

बुद्धिविषे है, आत्माकी नहीं और जो आत्माविषे प्रतीत होते हैं सो बुद्धि और आत्माकी एकरूपता करिके भान है, वास्तव आत्मा निर्विकार सच्चिदानंदस्वरूपहीं है इति ॥ २४ ॥

सो विशेषकरिके कहते हैं ॥

आत्मनो विक्रिया नास्ति बुद्धेर्बोधो न जात्विति ॥ जीवः सर्वमलं ज्ञात्वा कर्ता द्रष्टेति मुह्यति ॥ २५ ॥

आत्मन इति ॥ आत्माविषे तौ किसी तरह कोई भी विकार है नहीं. काहेतें, की आत्मा निर्गुण है और निष्क्रिय कहे क्रियारहित है और शांत है, निरवद्य कहे वानीकरिके कहा नहीं जाता और निरंजन कहे मायाका लिपतें रहित है; ऐसे श्रुति भी आत्मस्वरूपकी निर्णय करती है. "निर्गुणं निष्क्रियं शांतं निरवद्यं निरंजनं" इति श्रुतेः॥ "अव्यक्तोयमचिंत्योयमविकार्योयमुच्यते" इति स्मृतेश्च ॥

बुद्धिविषे तौ बोधकी शंकाकी नास्ति है, काहेतें, की मायाका कार्य होनेतें जड है. तौ भी अंतःकरण अवछिन्न अर्थात् उपाधिवाले चेतनकी चेतनताकरिकै संपूर्ण देह इंद्री अंतःकरणादि जड पदार्थ चेतनात्मक प्रतीत होते हैं सो अन्तःकरण और आत्माके अभेदज्ञानकरि बुद्धीके कर्त्ता-भोक्तादिक धर्म अज्ञानतें आत्माविषे प्रतीत होते हैं सो मिथ्या भ्रम है, आत्माविषे किंचित् भी विकार है नहीं ॥ २५॥

अब आत्माविषे अन्यथा आरोप, अज्ञानका फल और तत्त्वज्ञानका फल दिखाते हैं.

रज्जुसर्पवदात्मानं जीवं ज्ञात्वा भयं वहेत ॥ नाहं जीवः परात्मेति ज्ञातं चेन्निर्भयो भवेत ॥ २६ ॥

रज्जुसर्पवदिति ॥ जैसे महाअंधकारके-विषे विकाररहित रस्सी आदिकेविषे सर्प आदि-

के आरोपतें भयकंपादि दोष पुरुषकों प्राप्त होते हैं, इसीप्रकार सर्वविकाररहित आत्माकों सद्धि जीव कहे सद्वितीय परिच्छिन्न संसारी अज्ञान करिकें जानता है; ऐसी आत्माविषे मिथ्या निश्चयतें नानाप्रकारकी संसारी पीडानिमित्त भयकों प्राप्त होना है, ऐसे श्रुतिभी कहती है, द्वैतकरिकें पुरुषकों नानाप्रकारके भय होते हैं: और अपने और आत्माविषे अंतर अर्थात् भेद मानता है; तिस पुरुषकों जन्ममरणका भय अवश्य होता है; औरजो पुरुष आत्मस्वरूपकों नहीं जानता सो अवश्य नष्ट होता है; और स्मृतिभी कहती है, जो किंचित् भेद भी आत्मा और परमात्मामें मानता है सो पुरुष अवश्य नरकमें प्राप्त होता है- तथा च श्रुतिः॥"द्वितीयाद्वै भयं भवति। उदरमंतरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति। न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिरिति श्रुतेः॥ ईषदप्यंतरं कृत्वा रौरवं नरकं व्रजेदिति स्मृतेश्च"॥ और जब ऐसा जानता है, की मैं जीव नहीं, मैं तो अखण्ड

अद्वितीय सच्चिदानंदस्वरूप परमात्मा जगत्साक्षी असंग ब्रह्म हूं, इसप्रकार तत्त्वमस्यादि महावाक्यकरिकै जानता है सो पुरुष निर्भय हो जाता है. "ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवतीति श्रुतेः" ॥ २६ ॥

शंका– अति समीप जो आत्मा है, तौ मनबुद्धिआदिक आत्माकों काहे नहीं जानते वा देखते हैं.

उत्तर–मन आदि संपूर्ण दृश्य जड पदार्थ हैं, तिनकरिकै आत्मा नहीं जाना जाता, यह कहते हैं.

आत्मावभासयत्येको बुद्ध्यादीनींद्रियाणि च ॥ दीपो घटादिवत्स्वात्मा जडैस्तैर्नावभास्यते ॥२७॥

आत्मेति ॥ आत्मा केवल एक है; सो संपूर्ण मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारादिकनकों भासयति कहे प्रकाशता है, सो मन, बुद्धि आदि जड-

नकरिकै नहीं भासता. अर्थात् नहीं प्रकाशता. जैसे एकही दीप घटादि सर्व पदार्थनकों प्रकाशता है. और घटादि मलिन पदार्थनकरिकै दीप नहीं प्रकाशता ॥ २७ ॥

शंका– आत्मा बुद्धिकरिकै जो नहीं जाना जाता. अर्थात् नहीं प्रकाशता तो आत्मस्वरूप जाननेके लिये कोई और दूसरा ज्ञान चाहिये.

उत्तर– आत्मा आपही बोधस्वरूप है इसलिये आत्माकों बोधांतरकी इच्छा है नहीं, तिसकों दृष्टांतकरिकै कहते हैं.

स्वबोधे नान्यबोधेच्छा बोधरूपतयात्मनः ॥ न दीपस्यान्यदीपेच्छा यथा स्वात्मा प्रकाशते॥२८॥

स्वबोधे नेति॥ आत्मा आपही बोधस्वरूप है, इस प्रकार नित्य बोधस्वरूप होनेतें दूसरे बोधकी इच्छा नहीं. काहेतें, की आत्मा अनुभव

अर्थात् चेतनस्वरूपही हैं; जैसे दीपककों अपने प्रकाश करनेकों दूसरे दीपककी इच्छा नहीं॥२८॥

शंका–जब आत्मा आपही प्रकाशमान साक्षात्कार है तो विना जतनहीं सर्व पुरुष मुक्त हैं. आत्मज्ञानका कुछ प्रयोजन है नहीं. काहेतें, की साक्षात्कारपर्यन्त सम्पूर्ण जतन हैं, साक्षात्कार भयेतें जीव सर्व बंधरहित ब्रह्मस्वरूप हो जाता है.

उत्तर–आत्माकीचेतंन्यरूपता अरु अपरोक्षताका जो ज्ञान है, सो सामान्य ज्ञानका कथन है. मुक्तिका साधन नहीं, तो मुक्तिका साधन कौन है, ऐसा पूछे तो श्रवण कर. महावाक्यजन्य जो ब्रह्म और आत्माकी एकताका कथन है सो मुक्तिका साधन है. सो कहते हैं. ॥

निषिध्य निखिलोपाधीन्नेति नेती-

ति वाक्यतः ॥ विंद्यादैक्यं महावा- क्यैर्जीवात्मपरमात्मनोः ॥ २९ ॥

निषिध्येति ॥ नेति नेति इति वाक्यकरि- के निखिल कहे संपूर्ण उपाधियोंका निषेध कहे त्याग करै. और महावाक्यके प्रमाणकरिके जीव आत्मा अरु परमात्माकों निश्चे करै. 'अर्थात आदे- शो नेति नेतीत्येतन्निरसनं' इति.यह व्यासनारायण- नें श्रुतिसूत्र कहा है, तिसका अर्थ यह है– नेति नेति कहे न इति, न इति, ऐसे दो वचन अनंगी कारविषे तात्पर्य है. यह नहीं यह नही, ऐसे वे- दकी आज्ञारूप उपदेश करिके संपूर्ण जो समष्टि- व्यष्टिरूप उपाधि है, स्थूल सूक्ष्म वा कार्य कारण अथवा नामरूपकों निषेध अर्थात् अनात्म जड पदार्थनका त्याग करै और संबंध तीनिसहित 'तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म, प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मा- स्मीति' इन वेदनकी महावाक्यनकरिके जीव,

आत्मा और परमात्माकी एकरूपताकों निश्चै करै, तिसी निश्चयका नाम मुक्ति है, सोई मुक्तिका साधन है, तिसका नाम तत्त्वज्ञान है, अब संबंध तीनि कहतेहैं. सामानाधिकरण्यं १, विशेषणविशेष्यता २, लक्ष्यलक्षणभाव ३, तहाँ जिस वस्तुका जिस वस्तुके साथ सदा अभेद होवै सो मुख्य सामानाधिकरण्य है, जैसे सुवर्ण और भूषणगत सुवर्णका सदा अभेद होवै है और जिस वस्तुका जिस वस्तुके साथ बाधकरिके अभेद होवै सो बाध सामानाधिकरण्य है. जैसे नाम रूप भूषणका बाधकरिके सुवर्णरूपताकों प्राप्त होता है सो बाधसामानाधिकरण्य है, अथवा दो पदनकी प्रवृत्ति भिन्न भिन्न होवै, और दो पदनका अर्थ एकहीं होवै. जैसे घट और कुंभ शब्द भिन्न भिन्न है, परंतु लक्ष्य मृत्तिका दोनोंकी एक है, अथवा जैसे 'सोऽयं देवदत्त' इस वाक्यके तीनि पद हैं,सो। अयं। देवदत्त। तहां सो जो

है सो परोक्ष देशकालका वाचक है, और अयं अ-
परोक्ष देशकालका वाचक है, ऐसे दोऊ पदनकी
प्रवृत्तिनिमित्त जुदा जुदा है, परंतु दोऊ पदन-
का तात्पर्य देवदत्तस्वरूपविषे है, अर्थात् देवदत्त-
विषे संबंध है, काहेतें, की दोऊ पदनका निमित्त
मात्र भिन्न भिन्न है, और प्रवृत्ति देवदत्तस्वरूप-
विषे है, यह सामानाधिकरण्य है. इसी प्रकार
तत्त्वमसि वाक्यविषे परोक्षादिसहित जो चेतन
तत्पदका वाच्य अर्थ; और अपरोक्षादिसहित जो
चेतन त्वं पदका वाच्य अर्थ; इन दोऊ पदनका
भी निमित्त जुदा जुदा है, और प्रवृत्ति दोऊ पद-
नकी एक शुद्ध चेतनविषेहीं है, अर्थात् दोऊ पदनका
संबंध शुद्ध चेतनतें है, अथवा तात्पर्य चेतनविषेहीं
है. यह सामानाधिकरण्य प्रथम संबंध है, और वि-
शेषणविशेष्यता दूसरा संबंध है, जैसे 'सोयं दे-
वदत्त' सो और अयं ये दोऊ पद देवदत्तके विशेष-
ण हैं. और देवदत्तस्वरूप विशेष्य है, तिन दोऊ

परस्पर संबंध है; कहेतें, की सो और अयं ये दोऊ देवदत्तके स्वरूपके निश्चै करावनेवाले हैं. तैसे तत्त्वमसि वाक्यविषे भी तत्पदार्थ जो है परोक्षादि विशेषणसहित चैतन्य और त्वंपदार्थ जो है अपरोक्षादि विशेषणसहित चैतन्य सो परस्पर भेद व्यवहार तिनका विशेषणविशेष्यभाव संबंध है. और तीसरा लक्ष्यलक्षणभाव संबंध है, जैसे तिसविषे भी सो और अयं शब्द जो है चैतन्यके विशेषण सो ये दोऊ पद लक्षण हैं. और देवदत्त मात्र लक्ष्य है. यह लक्ष्यलक्षणभाव संबंध है. इसी तरह तत्त्वमसि वाक्यमें तत् त्वंपदनका वाच्यअर्थविषे सद्वितीय अद्वितीय परोक्ष अपरोक्ष व्यापक परिच्छिन्न आदिका जो परस्पर विरोधधर्मवाले हैं, तिनको त्याग करिके विरुद्धधर्मरहित अखंड सच्चिदानंद चैतन्यके साथ लक्ष्यलक्षणभाव संबंध है इति सो ये तीनि संबंधद्वारा लक्षणाकरिके जीवब्रह्मकी एकता सिद्धि होती है; तातें लक्षणाका स्वरूप

कहतें हैं. सो लक्षणा जहती, अजहती, जहताज-
हती भेदतें तीनि प्रकारकी हैं,तहाँ प्रथम जहतील-
क्षणा कहते हैं. जैसे गंगामें घर है, तो गंगापदका
जो है वाच्य अर्थ प्रवाह तिसविषे घरका असंभव है,
इस लिये गंगापदकी तीरविषे लक्षणा है.और वाच्य
अर्थका संपूर्ण त्याग है. सो महावाक्यविषे जहती
लक्षणा बनै नहीं; काहेतें, की महावाक्यमें संपूर्ण
वाच्य अर्थका त्याग नहीं, और अजहती लक्षणा,
जैसे अरुणो धावति सो बने नहीं;काहेतें की अरुणो
नाम लाल रंगका है,तिसविषे धावना बने नहीं.तातें
लाल घोडा दौरता है, सो अजहतीमें वाच्य अर्थका
त्याग नहीं, अधिकका ग्रहण है, सो भी महावाक्य
विषे बनै नहीं; काहेतें, महावाक्यमें वाच्यअर्थका
संपूर्ण ग्रहण नहीं. तीसरी जहताजहती अर्थात् भा
गत्यागलक्षणा है, कहे एक भागका त्याग, एकका
ग्रहण सो महावाक्यविषे माना है, जैसे सोयं देव
दत्त. जैसे सो और अयं सो सो देशकालविशेषण

अंशकों त्यागिके अखंड देवदत्तस्वरूपमात्रमें भागत्यागलक्षणा है, तैसे तत्त्वमसि इत्यादि महावाक्यनविषे समष्टि, व्यष्टि, स्थूल, सूक्ष्मरूप वाच्यअर्थविरोध अंशको त्यागिकें व्यापक अखंड चैतन्यमात्र लक्ष्यकों ग्रहण भागत्यागलक्षणा जानना इति २९

शंका–स्थूलादि उपाधिनकों न त्याग करे तो हानि तो कुछ है नहीं; काहेतें चैतन्य असङ्ग है.

उत्तर–उपाधिनके त्यागविना अखंड सच्चिदानंदस्वरूपका जानना अति कठिन है, जैसे अज्ञानकरिके आरोपित सर्पके निषेधविना रज्जुका यथार्थ स्वरूप नहीं जानते तैसे स्थूल शरीर आदिके निषेधविना सच्चिदानंद परमात्माकी निश्चय नहीं होती ॥

आविद्यकं शरीरादि दृश्यं बुद्बुदवत् क्षरम् ॥ एतद्विलक्षणं विंद्यादहं ब्रह्मेति निर्मलम् ॥ ३० ॥

आविद्यकमिति ॥ देह, इंद्री आदिक जो हैं संपूर्ण दृश्य पदार्थ सो अविद्याकल्पित बुदबुदवत् क्षर कहे नाशमान हैं. तातें सर्वका निषेध अर्थात् त्याग करे, तिनतें भिन्न सच्चिदानंदस्वरूप निर्मल कहे अविद्यामलरहित ब्रह्म मैं हूं, ऐसे निश्चै करे, तौ पुरुष कृतकृत्य होइ इति ॥ ३० ॥

अब महावाक्यजनित ज्ञानकी पूर्वोक्त ब्रह्म और आत्माकी एकता ज्ञानकी दृढताके लिये तत्त्वज्ञानका मनन करनेका प्रकार कहते हैं ॥

देहान्यत्वान्न मे जन्मजराकार्श्यलयादयः ॥ शब्दादिविषयैः संगो निरिंद्रियतया न च ॥ ३१ ॥

देहान्यत्वादिति ॥ देह कहे स्थूल शरीरके जो हैं जन्म, जरा, कृशता, मृत्यु; आदि पदतें क्षुधातृषादि धर्म, सो मेरेविषे हैं नहीं. काहेतें, मैं नित्य जन्म जरा मरण परिणामतें रहित सत

चित् आनंदस्वरूप देहतें भिन्न हूं, और शब्द स्पर्शादिक जो पंचविषय हैं, सो भी मेरेविषे नहीं. काहेतें, मैं असंग कूटस्थ साक्षी आत्मा निरिंद्रिय कहे संपूर्ण इंद्रियोंतें रहित हूं, पंचभूतनके कार्य जो हैं, इंद्री और विषय तिनका परस्पर संयोग वियोग होउ अरु मैं तौ नित्य हूं, इसलिये किसीका कार्य नहीं, इस कारणतें मेरे असंगस्वरूपका वास्तव किसीका संबंध है नहीं इति ॥ ३१ ॥

अब मनके धर्मनकों भी आत्माविषे निषेध करते हैं ॥

अमनस्त्वान्न मे दुःखरागद्वेषभयादयः ॥ अप्राणो ह्यमनाः शुभ्र इत्यादिश्रुतिशासनात् ॥ ३२ ॥

अमनस्त्वादिति॥ दुःख राग कहे विषयोंविषे प्रीति औ द्वेष कहे वैर, संकल्प, विकल्प, मोह, शोक, भय इत्यादि संपूर्ण मनके धर्म हैं, मेरे नहीं.

काहेतें, मैं अमन कहे मनतें रहित अर्थात् भिन्न मनका साक्षी हूं. और क्षुधा तृषा आदिक जो प्राणोंके धर्म हैं सो भी मेरेविषे नहीं, काहेतें, अप्राण कहे मैं प्राणोंतें रहित अर्थात् भिन्न साक्षी हूं. तिसतें क्षुधा, तृषा, काणत्व, बधिरत्व आदि धर्म मेरेविषे नहीं. जिसतें मैं मनतें भिन्न हूं, इस कारणतें, रागद्वेषादि भी धर्म मेरेविषे नहीं, और मैं शुभ्र हूं, इसतें मलिनरूप स्थूल देहतें भी भिन्न हूं. काहेतें, जन्ममरणादि धर्मनका आत्माविषे निषेध है, और अपने कार्यवर्गतें परे अर्थात् भिन्न और अक्षर अर्थात् अव्यक्त कहे मूलमायातें भिन्न इसतें मूढता आदि अज्ञान धर्म भी मेरेविषे नही, इस कारणतें निर्विकार शुद्ध चैतन्य ब्रह्म हूं इति ॥ ३२ ॥

जो जन्य पदार्थ है, सो अनित्य हैं; इस कारणतें प्राण आदिकनकी अनात्मताकों साधन करते हैं.

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ॥ खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथ्वी विश्वस्य धारिणी ॥ ३३ ॥

एतस्मादिति ॥ प्रत्यगभिन्न कहे प्रतिशरीरनमें अंतःकरणका साक्षी वा प्रेरक अथवा असत् जड दुःखरूप संसारतें विपरीत स्वभाववाला सत् चित् आनंदरूप ब्रह्मतें प्राण जो है क्रियाशक्ति, अंतःकरण जो है मनज्ञानशक्ति, अरु संपूर्ण दश इंद्री और देहादिक खं जो है आकाश, वायु, ज्योति जो है अग्नि, आप, कहे जल और पृथ्वी जो है संपूर्ण स्थावरजंगमरूप प्राणियोंको धारण करनेवाली, इतना प्रपंच अनादि अविद्याकरिकै उत्पत्ति होता भया है इति ॥ ३३ ॥

निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो निर्विकल्पो निरंजनः ॥ निर्विकारो निराकारो नित्यमुक्तोऽस्मि निर्मलः ॥ ३४ ॥

निर्गुण इति ॥ प्रकृति जो है माया, तिसका जो कार्य है बुद्धि, तिसतें भिन्न और सतोगुणादि और राग इच्छादिरहित मैं निर्विकार साक्षी ब्रह्म हूं, और निष्क्रियः कहे देह इंद्री आदि क्रियारहित हूं. अर्थात् देह इंद्रियादितें जुदा हूं. और मैं नित्य हूं सर्व कालमें चैतन्यरूप हूं, और निर्विकल्पः कहे संकल्पविकल्पधर्मवाले मनतें भिन्न हूं: और निरंजन कहे मायाका जो है कार्य जगतरूपी मलतें रहित हूं. और निर्विकार कहे विकार जो है मायाका कार्य, जगत् मिथ्या कल्पित तिसका मैं अधिष्ठान हूं, आकाशवत् स्वतंत्र निरवयव हूं, और नित्यमुक्त कहे मोहादिक जो हैं बंधन अज्ञानकल्पित, सो वास्तव मेरे असंग स्वरूपविषे हैं नहीं, और मैं निर्मल हूं कहे अज्ञानअविद्यारूप मलतें रहित हूं इति ॥ २४ ॥

शंका– गुरुकी स्व-

रूप इसी प्रकार है; परंतु परिच्छिन्न तो है. काहेतें, की देहवान् प्रतीत होता है.

उत्तर– असंग आत्माका किसी पदार्थका संग नहीं.

अहमाकाशवत्सर्वंबहिरंतर्गतो-ऽच्युतः ॥ सदा सर्वसमः शुद्धो निःसंगो निर्मलोऽचलः ॥ ३९ ॥

अहमिति ॥ संपूर्ण जो हैं जन्य पदार्थ जड जगत् नाम रूप दृश्य तिसके भीतर में आकाशवत् व्यापक और सबतें भिन्न किसीमें लिप्त नहीं. तात्पर्य यह–मैं प्रत्यक्चैतन्यरूप अस्ति, भाति, प्रियरूप करिके सबके बाहर भीतर एकरस व्यापक हूं.

शंका– तो सर्वके विनाश होनेतें तेरा भी विनाश होवेगा.

उत्तर–अच्युत इति, संपूर्ण कल्पित जगतके

विनाश होनेतें मेरा विनाश है नहीं. कातें मैं
अधिष्ठानस्वरूप हूं.

शंका– अधिष्ठानरूपताकरिकै तूं विनाशर हित तौ है, परंतु अंतःकरणादिविषे तूं अपनी सत्ता और चैतन्यता दो प्रकारकी सत्ता देनेवाला और घटादि पदार्थनविषे केवल सत्तामात्रही है, तातें तेरी विषमसत्ता तौ है.

उत्तर– सदा सर्वसम इति ॥ मैं सदा सर्व पदार्थनविषे सम हूं. परंतु अंतःकरणादि जो हैं, सो सतोगुणका कार्य होनेतें स्वच्छ है, इसकारणतें तिनविषे आत्माकी सत्ता चैतन्यता दो प्रकारकी प्रतीत होती है. और घटादि तमोगुणका कार्य होनेतें मलिन हैं. तिनविषे केवल सत्तामात्रही प्रतीत होती है. चैतन्यता नहीं और सर्व पदार्थनविषे आत्मा सम है, इस कारणतें आत्माविषे सम विषम भाव नहीं है, अरु शुद्ध कहे

पुण्यपापसंबंधरहित हूं और असंग कहे वास्तव सर्व संबंधरहित हूं. और निर्मल कहे संशयादिमलरहित हूं और अचल कहे सच्चिदानंदस्वरूप चलाचल धर्मनतें रहित हूं इति ॥ ३५ ॥

अब प्रत्यगात्मा जो है त्वंपदार्थ जीवात्मा, तिसका जिस प्रकारका लक्ष्यस्वरूप वरनन करा है, तिसी प्रकारका तत्पदार्थब्रह्मका लक्ष्यस्वरूप भी वरनन करा है, तिन दोऊका अभेद अनुसंधान अर्थात् चिंतन करते हैं.

नित्यशुद्धविमुक्तैकमखंडानंदमद्वयम् ॥ सत्यं ज्ञानमनंतं यत् परं ब्रह्माहमेव तत् ॥ ३६ ॥

नित्येति ॥ नित्य कहे भूत भविष्य वर्तमान कालविषे बाधारहित शुद्ध अविद्या आदि मलरहित विमुक्त संसाररहित एक सजातीय भेदशून्य, अखंड, देशकालवस्तुपरिच्छेदशून्य, आनंद-

सुखस्वरूप, अद्वय, विजातीय, स्वगतभेदरहित, इस प्रकारका जो है परब्रह्मका स्वरूप "सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्मेति" श्रुतिप्रतिपादित जो है सच्चिदानंदस्वरूप सो ब्रह्म मैं हूं ॥ ३६ ॥

इस प्रकार जो पुरुष बहुत कालपर्यंत अभ्यास करता है, तिसकरिकै जिस समैमें दृढ भया ब्रह्म और आत्माका ज्ञान, तिसी समैमें अविद्या जो है अज्ञान और तिसका कार्य जन्ममरणरूप संसार, तिसकी नाश कर देता है. यह कहते हैं.

एवं निरंतराभ्यस्ता ब्रह्मैवास्मीति वासना ॥ हरत्यविद्याविक्षेपान् रोगानिव रसायनम् ॥३७॥

एवमिति ॥ इस प्रकार पूर्वोक्त कही हुई रीतिसैं निरंतर बहुत काल जो पुरुष आदरपूर्वक मनन करता है, तिसतें उत्पत्ति होती है दृढ वासनाकी मैं ब्रह्म हूं, सो देह और आत्माके ज्ञानस-

व ब्रह्म और आत्माकी एकताके ज्ञानकी संशय विपर्ययतें रहित जो दृढता, सो अविद्याकृत जो चित्तके विक्षेप कहे आत्मा और ब्रह्मका वियोग तिसकों भलीप्रकारतें नाश करि देती है; जैसे रसायन जो है औषध तिसके बहुत काल सेवनतें रोगोंकी नाश करि देती हैं ॥ ३७ ॥

अब ब्रह्म और आत्माकी एकताकी भावनाके लिये साधन कहते हैं ॥

विविक्तदेश आसीनो विरागो विजितेंद्रियः॥ भावयेदेकमात्मानं तमनंतमनन्यधीः ॥ ३८ ॥

विविक्तदेश इति ॥ विविक्त कहे जनसंबंधरहित एकांतदेशविषे सुखपूर्वक आसन करे,और विराग कहे शब्दस्पर्शादि विषयोंविषे इच्छारहित, विशेषकरिकै जीता है इन्द्रियोंकों जिस पुरुषने, सो अनन्यधी कहे आत्मा, अर्थात् अपने आपही

है. ब्रह्म दूसरा कोई है नहीं. ऐसी जो है तत्परबु-द्धि जिसकी, ऐसा जो पुरुष है; सो अनंत कहे देशकालवस्तुपरिच्छेद अर्थात् अंत वा नाशर-हित वेद और शास्त्रकरिकै प्रसिद्ध आत्माकों भावना करे, की एक अद्वैत चैतन्यस्वरूप वासुदेव जो संपूर्ण भूतोंविषे वास करता है, सोई चैतन्य-स्वरूप वासुदेव में हूं, ऐसी चिंतना करे, निरंतर जिसकरिकै ब्रह्म और आत्माके एकताकी नि-श्चय होती है इति ॥ ३८ ॥

शंका– दृश्यप्रपंच व्यवहारविषे प्रत्यक्ष वर्त-मान एकताकी भावना कैसे होती है ॥

उत्तर– तहाँ कहते हैं ॥

आत्मन्येवाखिलं दृश्यं प्रविलाप्य धिया सुधीः ॥ भावयेदेकमात्मा-नं निर्मलाकाशवत्सदा ॥ ३९ ॥

आत्मनीति ॥ सुधी जो है शुद्ध अंतःकरण

वो बुद्धिवाला अधिकारी; सो विवेकवती बुद्धिके-
विषैं संपूर्ण दृश्यप्रपंचकों लय करै. तात्पर्य यह—
वाचारंभण [illegible] कहनमात्रहीं आत्मामैं विकार है,
तिसकों दूरि करै. अर्थात् पृथ्वीकों जलमैं लय करै.
जलकों अग्निमैं लय करै. अग्निकों वायुमैं लय करै.
वायुकों आकाशमैं,आकाशकों अव्याकृत अर्थात्
मूलप्रकृती वा मायामैं, तिसकों शुद्धब्रह्ममैं लय
करै. पीछे सो शुद्धब्रह्म व्यापक विष्णु मैं हूं ऐसा
चिंतन करै. तहाँ दृष्टांत—निर्मलाकाशवदिति. जैसे
शरत्कालविषे धूरि, मेघ आदि उपाधितैं रहित
स्वच्छ आकाश होता है. तैसे आत्माकों स्वच्छ
एकरस संभावना करै इति ॥ ३९ ॥

शंका— संपूर्ण दृश्यप्रपंचकों त्यागिकै विवे-
की समाधिविषे किस रूपतैं स्थित होता है, त-
हां कहते हैं ॥

नामवर्णादिकं सर्वं विहाय पर-

एवमिति ॥ पूर्वोक्त कही हुई रीतिसें आत्मा जो है अंतःकरण, अर्थात् मन सो नीचेकी अरनी कहे लकरी करे, और प्रणव जो है ॐकार सो ऊपरकी लकरी करे, तिन दोनोंकी एकताकों ध्यान कहते हैं. पतंजलि उक्त ध्यानरूप मथन अर्थात घसना तिसका सर्वदा बहुत काल निरंतर श्रद्धापूर्वक करनेतें उदित भई जो अखंडाकार अहं ब्रह्मवृत्ति कहे ज्ञानस्वरूप ज्वाला कहे अग्निकी लपट सो संपूर्ण अज्ञान और अज्ञानका कार्य जन्ममरणरूप संसार, सोई भया इंधन तिसकों भलीप्रकारतें भस्म करि देती है. तथा च श्रुतिः"आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ॥ ज्ञाननिर्मथनाभ्यासाद्दहेत्कर्म स पंडित" इति ४२

उदित भई ज्वाला सर्व अज्ञानरूप इंधनकों भस्म करती है सो दृष्टांत करिके कहते हैं. निरावरण आत्माकी प्रकाशमानताका भी दृष्टांत कहते हैं ॥

अरुणेनेव बोधेन पूर्वसंतमसे हृते ॥ तत आविर्भवेदात्मा स्वयमेवांशुमानिव ॥ ४३ ॥

अरुणेनेवेति ॥ जैसे अरुणके उदय अर्थात् प्रकाश होनेतें प्रथम तम जो है अंधकार, सो दूरि हो जाता है. अरुण नाम है सूर्यके रथवानकों, तिसी तरह मैं ब्रह्म हूं, ऐसे ज्ञानकरिकै संपूर्ण अज्ञानरूप तम दूरि होनेतें पश्चात् अंशुमान् कहे सूर्यवत् आत्मा आपही प्रगट होता है, अर्थात् निरावरणवत् प्राप्त होता है, "ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ॥ तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् " इति ॥ ४३ ॥

शंका—जो साक्षव् अपरोक्षतातें ब्रह्म होता है, ऐसे श्रुतिप्रमाणकरिकै आत्मा नित्य प्राप्त है. काहेतें, की अपने आप कभी अप्राप्त और परोक्ष होता नहीं. सदाहीं अपरोक्ष और साक्षात्कारहीं

होता है, और तुम कहते हो, की अज्ञान नाश होनेतें प्राप्त होइगा, सो अयुक्त है.

उत्तर— नित्य प्राप्त जो है आत्मा, सो अविद्याकरिकै अप्राप्तवत् प्रतीत होता है, तिस अविद्याके नाश होनेतें प्राप्तवत् प्रतीत होता है, यह कहतें हैं.

आत्मा तु सततं प्राप्तोऽप्यप्राप्यवदविद्यया ॥ तन्नाशेऽप्राप्तवद्भाति स्वकंठाभरणं यथा ॥ ४४ ॥

आत्मा त्विति ॥ तत्त्वज्ञानदृष्टिकरिकै आत्मा सतत कहे निरंतर यथार्थस्वरूपतें प्राप्त है, परंतु अज्ञानियोंकों अनादि अज्ञानकरिकै अप्राप्तवत् प्रतीत होता है. सो श्रीगुरुकी कृपातें तत्त्वमस्यादि महावाक्यजनित ज्ञानकरिकै अविद्याके नाश होनेतें प्राप्तवत् प्रतीत होता है. जैसे किसी पुरुषका अपने कण्ठविषे प्राप्त अपना माला तिस

कों अज्ञानकरिके अप्राप्तवत् प्रतीत होता था, तिसके नाश होनेतें प्राप्तवत् प्रतीत भया, तैसे आत्मा भी है इति ॥ ४४ ॥

शंका– जिसकी साक्षात्कार अपरोक्षतातें ब्रह्म होता है ऐसे श्रुतिप्रतिपादित ब्रह्म, सो नित्यप्राप्त भी श्रुती कहती है. जीवात्माकों नहीं कहती.

उत्तर– अज्ञान करिके भ्रमतें परमात्माही जीवपनाकों प्राप्त भया है, वास्तव कोई जीव है नहीं, सो दृष्टांततें कहते हैं.

स्थाणौ पुरुषवद्भ्रांत्या कृता ब्रह्मणि जीवता ॥ जीवस्य तात्विके रूपे तस्मिन्दृष्टे निवर्तते ॥ ४५ ॥

स्थाणाविति ॥ जैसे अंधकारकरिके आवृत स्थाणुकों भ्रांतिकरिके यह पुरुष है ऐसे मिथ्या प्रतीत होती भई, तैसे अनादि अविद्याकृत

भ्रांतितें ब्रह्मविषे कर्तृत्वभोक्तृत्व आदि जीवलक्षण अर्थात् जीवपना आरोप करा, सो जीवका तात्विक अर्थात् वास्तव स्वरूप साक्षात् अपरोक्ष ब्रह्म तिसकों तत्त्वमस्यादि वाक्यनकरिके साक्षात् करै तौ जीवपना निवृत्त होइ. जैसे स्थाणुके निश्चय होनेतें कल्पित पुरुषकी भ्रम दूरि हो जाती है; तैसे जीवका वास्तव स्वरूप जानेतें जीवपना नाश हो जाता है ॥ ४५ ॥

शंका– विवेकिनकों भी मेरी तेरी इत्यादि व्यवहार दृढ प्रतीत होता है, तौ कैसे तुम संसारकी निवृत्ति कहते हौ?

उत्तर– मेरी तेरी इत्यादि व्यवहार अज्ञानका कार्य है भी, परंतु तत्त्वज्ञानकरिके नाश हो जाते हैं, सो दृष्टांत कहते हैं.

तत्त्वस्वरूपानुभवादुत्पन्नं ज्ञान-

मंजसा ॥ अहं ममेति चाज्ञानं बाधते दिग्भ्रमादिवत् ॥ ४६ ॥

तत्त्वेति ॥ जीवका जो वास्तव तत्त्वस्वरूप सच्चिदानंदात्मक लक्ष्य तिसके अनुभव होनेतें उत्पन्न भया जो तत्त्वमस्यादि महावाक्यनतें ब्रह्म आत्माकी एकताका दृढ ज्ञान, सो तुरतही अहं मम अर्थात् मेरी तेरी यह जो है अज्ञानका कार्य तिसकी नाश करि देती है. जैसे अज्ञानकरिकै दिशनका भ्रम और स्थाणुआदिविषे पुरुषादिका भ्रम सूर्यके दर्शन होनेतें आपहीं नाश हो जाते हैं इति ॥ ४६ ॥

अब निवृत्त अज्ञान कार्य विवेकियोंकी दृष्टि वरनन करते हैं.

सम्यग्विज्ञानवान् योगी स्वात्मन्येवाखिलं स्थितम्॥एकं च सर्वमात्मानमीक्षते ज्ञानचक्षुषा ॥४७॥

इस प्रकार ज्ञानीकी वास्तव दृष्टि कहा. अब तिसकी जीवन्मुक्ति अवस्था दर्शाते हैं.

जीवन्मुक्तिस्तु तद्विद्वान्पूर्वोपाधिगुणांस्त्यजेत॥ सच्चिदानंदरूपत्वाद्भवेद्भ्रमरकीटवत् ॥ ४९ ॥

जीन्मुक्तिरिति ॥ आत्मतत्त्व साक्षात्कार विवेकी जीवन्मुक्त पूर्व कहे तत्त्वज्ञान होनेके प्रथम अनादि अविद्याकल्पित जो देह इंद्रियादि और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकारादि उपाधी जो हैं, सो त्रिगुणी मायाके धर्म जानिके विवेकद्वारा त्याग न करता है, सो पुरुष सच्चिदानंदस्वरूप है, भ्रमरी कीटवत् साक्षात् ब्रह्म होता है. यहाँ यह आशय है-जैसे भृंगी एक कीट होता है. सो भ्रमर कीट विशेपकी भय करिके तिसके आकार अपनी चित्तकी वृत्तिकों करता है, सो प्रथम शरीरके धर्मनकों त्यागिके तिसका रूप होजाता है; तैसे ब्रह्मवेत्ता उपाधीरहित ब्रह्म हो जाता है ॥ ४९ ॥

अब जीवन्मुक्तकों श्रीरामचंद्ररूपताका अ-
लंकारकरिके वरनन करते हैं.

**तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा रागद्वेषा-
दिराक्षसान् ॥ योगी शांतिसमा-
युक्तो ह्यात्मारामो विराजते ॥५०॥**

तीर्त्वेति ॥ आत्माविषे आराम कहे स्थि-
ति है जिसकी, ऐसा योगी मोहार्णव कहे अज्ञा-
नरूप समुद्रकों ब्रह्मात्मकी एकताके ज्ञानरूप पुल-
पर चढिके सो पार जाइ, रागद्वेषादि लक्षण
रावण इत्यादि राक्षसोंकों, जिनने शांतिरूपी
सीताकों हरा अर्थात् चुराया था, सो शुद्धांतःक-
रणरूपी धनुपतें वैराग्यविचारादि बानोंकरिके
हत्वा अर्थात् नाश करिके शांतिरूप लक्षण सी-
ताकों लेकर तिससंयुक्त सो पुरुष प्रारब्धशेप
स्थिति शरीरलक्षण अयोध्याविषे स्वरूपलक्षण
करिके अपने राजविषे निवृत्तीरूप सिंहासनपर

बैठिकै विशेषकरिके राजतें कहे प्रकाशमान होता भया. जैसें श्रीरामचंद्रजी समुद्रको बांधिके पार जाई रावणादि राक्षसोंको मारिके सीतासमेत अयोध्यापुरीमें सिंहासनपर बैठि विराजमान होते भये इति ॥ ५० ॥

अब लक्षण विधानतें जीवन्मुक्तकी अवस्था अर्थात् स्थितिको कहते हैं ॥

बाह्यानित्यसुखासक्तिं हित्वात्मसुखनिर्वृतः ॥ घटस्थदीपवत्स्वच्छः स्वांतरेव प्रकाशते ॥५१ ॥

बाह्येति ॥ नेत्र आदि जो बाहरकी इंद्री हैं, तिनकी विषयोंके संबंधतें उत्पत्ति भया जो विषयानंद अनित्यरूप सुख तिसविषे आसक्ति अर्थात् प्रीतिको त्यागिके आत्मास्वरूपके सुखकरिके निर्वृत्त कहे आनंदित और स्वस्थ कहे अपने स्वरूपभूत महिमाविषे स्थिति, सो पुरुष अंतः कहे

अपने अंतःकरणविषे साक्षात्कार ब्रह्मरूप प्रकाशता है. चक्षु आदि वृत्तिद्वारा बाह्य विषयोंविषे विस्तारकी ज्ञानलक्षण तेजकरिकें तिनके निरोधतें अंतःकरणविषे प्रकाशमान है और चेतनतारूप बाहिर भी प्रकाशता है. जैसे घटविषे वर्तमान जो दीपक सो बाह्य निवृत्ति किरणोंकरिकै घटके अंतर विशेषकरिकें प्रकाशता है, और उसनता आदिक बाहिर भी प्रतीत होता है ॥ "प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्पार्थ मनोगतान् ॥ आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते " इति भगवद्वचनात् ॥ ५१ ॥

उपाधिस्थोऽपि तद्धर्मैर्न लिप्तो व्योमवन्मुनिः ॥ सर्वविन्मूढव-त्तिष्ठेदसक्तो वायुवच्चरेत् ॥ ५२ ॥

उपाधिस्थ इति ॥ देहादि उपाधियोंका साक्षीरूपकरिकें स्थित भी मुनी कहे वेदांतमनन

करनेविषे तत्पर तत्त्ववेत्ता व्योम कहे आकाशवत् जैसे आकाश भी धूरि इत्यादि उपाधियोंविषे लिप्त नहीं होता, तैसे उपाधियोंके धर्मनविषे तत्त्ववेत्ता लिप्त नहीं होता, और सर्व पृथिवीविषे फिरता है. और सर्वज्ञ भी है. गूंगे पुरुषकी तरह स्थित होता है, और प्रारब्धभोगकरिके प्राप्त विषयोंविषे आसक्त नहीं होता, वायुवत् आचरता है, जैसे वायु सुगंधिवाले पदार्थोंविषे आसक्ति अर्थात् प्रीतिरहित अपने स्वरूपहीमें चलती है, तैसे ज्ञानी भी अपने स्वरूपमें विचरता है इति ॥ ५२ ॥

अब ज्ञानीकी विदेहकैवल्यमुक्ति कहते हैं ॥

उपाधिविलयाद्विष्णौ निर्विशेषं विशेन्मुनिः॥जले जलं वियद्व्योम्नि तेजस्तेजसि वा यथा ॥५३ ॥

उपाधीति ॥ ज्ञानीकी प्रारब्धभोगोंके

समाप्त होनेतें देह इंद्री आदि उपाधी लय होती हैं, तिनके लय होनेतें मुनि जो है विवेकी सो व्यापक विष्णुपरब्रह्मविषे निर्विशेषं कहे सर्वविशेषरहित यथार्थरूपकरिके प्रवेश होता है. अत्यंत प्रवेशविषे दृष्टांत कहते हैं. जैसे जलमें जल अर्थात् नदी जो है समुद्रमें प्राप्त होकर नामरूपरहित अभेदरूप समुद्रहीं हो जाती हैं, तैसे विवेकी नामरूपरहित परे, ते परे जो परम पुरुष परब्रह्म है, तिसमें मिलिके अभेद हो जाता है. और जैसे घटाकाशकी उपाधीके नाश होनेतें घटाकाश महाकाशरूप हो जाता है. और तेज जो है दीपका दिवा अग्नि, सो तेजकेसाथ अभेद हो जाते हैं; तैसे ब्रह्मवेत्ता पुरुष देहादि उपाधीके नाश होनेतें ब्रह्मकेसाथ अभेद हो जाता है॥५३॥

अव विदेहमुक्ति अवस्थाविषे विवेकी जिस परब्रह्मकों प्राप्त होता है, तिसका निरूपण अष्ट श्लोकनतें करते हैं ॥

यल्लाभान्नापरो लाभो यत्सुखान्ना-
परं सुखम्॥ यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं
तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५४ ॥

यल्लाभादिति ॥ जिस ब्रह्मके लाभ अर्थात् प्राप्त होनेतें जगतविषे दूसरा लाभ नास्ति है. काहेतें, जिसकी परम पुरुषार्थतारूपकरिके संपूर्ण लाभ तिसके अंतर्भूत हैं, और जिस ब्रह्मके स्वरूप-सुखतें परे कोई सुख है नहीं; काहेतें, तिसकों निरतिशय कहे सर्वतें अधिक सुख होनेतें क्षुद्र सुख तिसके अंतर्भूत हैं, और जिस ब्रह्मके साक्षात्कार ज्ञानके परें और ज्ञानकी नास्ति है. काहेतें, ब्रह्मवेत्ताहीं ब्रह्म होता है, ऐसे श्रुतिप्रतिपादित ज्ञानका परम पुरुषार्थका हेतु होनेतें अतिश्रेष्ठ है, इस प्रकारका ब्रह्मस्वरूप जिस रूपकरिके विदेहकैवल्य अवस्थाविषे विवेकी स्थित होता है, तिस ब्रह्मस्वरूपकी निश्चय करे इत्यर्थः ॥ ५४ ॥

यद्दृष्ट्वा न परं दृश्यं यद्भूत्वा न पुनर्भवः ॥ यज्ज्ञात्वा न परं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५५ ॥

यद्दृष्ट्वेति ॥ जिस ब्रह्मकों देखि अर्थात् साक्षात्कारके परे और देखना नास्ति है. काहेतें, अधिष्ठानरूपके साक्षात्कार होनेतें संपूर्ण कल्पित जगत् साक्षात्कार हो जाता है, और जिस ब्रह्मके रूप होनेतें अर्थात् एकता प्राप्त होनेतें फेरि संसारमें जन्म नहीं होता. "यद्गत्वा न निवर्तंते तद्धाम परमं मम" इति भगवदुक्तेः ॥ और जिस ब्रह्मके सामान्यकरिके सर्वका उपादानरूपके जाननेतें और कछु जाननेकों नास्ति है. काहेतें, कार्यकी कारणतें भिन्न सत्ता है नहीं, सो कारणके जानेतें संपूर्ण कार्य जाना गया.जैसे मृत्तिकाके एक पिंड जानेतें तिसके संपूर्ण घटादि कार्य जाने गये 'तद्ब्रह्मेत्यवधारेत' तिस ब्रह्मकी निश्चय करे इति ॥ ५५ ॥

शंका–विदेहकैवल्य अवस्थाविषे तत्त्ववेत्ता जिसब्रह्मको प्राप्त अर्थात् स्वरूप होता है सो ब्रह्म परिच्छिन्न है, के अपरिच्छिन्न कहे व्यापक है? जो कहो परिच्छिन्न है तो परम पुरुषार्थ न सिद्ध भया नाशमान होनेतें और जो कहो व्यापक है, तो प्राप्ति बनती नही.

उत्तर–जिसकी परिपूर्ण नित्य आनंदरूपताकरिके पुरुषार्थता है. यह कहते हैं॥

तिर्यगूर्ध्वमधः पूर्णं सच्चिदानंदमद्वयम्॥ अनंतं नित्यमेकं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५६ ॥

तिर्यगिति॥ जो सच्चिदानंद अद्वैत कहे द्वैतप्रपंचरहित वस्तु तिर्यक् कहे पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, और नीचे ऊपर, सर्वत्र पूर्ण है. और अनंतं कहे देश, काल, वस्तु परिच्छेदसें रहित है. और नित्य कहे सत्य है. एक कहे सजातीय विजा-

तीय स्वगत भेदतें रहित है, तिस ब्रह्मकी, निश्चै करै मुमुक्षु इति ॥ ५६ ॥

अतद्व्यावृत्तिरूपेण वेदांतैर्लक्ष्यतेऽव्ययम् ॥ अखंडानंदमेकंयत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५७ ॥

अतदिति ॥ अतत् कहे जगत तिसकी व्यावृत्ति कहे निवृत्तिरूप अर्थात् परमार्थरूपकरिके जिसकों वेदांत लक्ष्य कहे वास्तवस्वरूप लक्षणाकरिके निश्चै करावते हैं. सो ब्रह्म अद्वैत है कहे अविद्याकल्पित जगतका जिसविषे भाव नहीं, और अखंड कहे सुखस्वरूप केवल निर्विकार जो ब्रह्म है तिसकी निश्चै करै विवेकी इति ॥ ५७ ॥

शंका–ब्रह्मा इंद्रादि श्रेष्ठ देवतनकों भी निरतिशय आनंदवाले शास्त्रनमें सुनते हैं. तुम कैसे केवल ब्रह्महीकों निरतिशय रूप कहते हो ?

उत्तर–तिन ब्रह्मा इंद्रादिककों भी जो सु-

ह्मानंद है सो ब्रह्मानंदका लेश अर्थात् अंशकों लेकर संपूर्ण आनंद होते हैं. और ब्रह्मानंदतें परे जगतविषे दूसरा कोई आनंद है नहीं, यह कहते हैं.

अखंडानंदरूपस्य तस्यानंदल-
वाश्रिताः ॥ ब्रह्माद्यास्तारतम्ये-
न भवंत्यानंदिनोऽखिलाः ॥५८॥

अखंडेति॥ जिस ब्रह्मका अपरिच्छिन्न आनंद स्वरूप है, तिसके आनंदसमुद्रस्वरूप परमात्माके आनंदका लव कहे सुखके लेशके आश्रय होकर ब्रह्मा इंद्र आदिक तारतम्य कहे कमती बढती अपनी अपनी पुण्यके अनुसार आनंदवाले होते है,सो सर्व ब्रह्मानंदके अंतर्भूत हैं, तातें जिस ब्रह्मानंदके लेश कहे कणिकामात्रते ब्रह्मा इंद्रादिकों पुण्य अनुसार क्षुद्रानंदका सुख प्राप्त होता है, तिसी ब्रह्मविषे विवेकी विदेहकैवल्य अवस्थाविषे स्थित होता है, यह भाव है इति ॥५८॥

शंका– यह आनंदस्वरूप ब्रह्म कहाँपर रहता है. जिसके आनंदके लेश करिके ब्रह्मा आदि आनंदताको प्राप्त होते हैं ॥

उत्तर– ब्रह्मका देश काल है नहीं. काहेतें, ब्रह्म सर्वगत है, सो दृष्टांत तें कहते हैं ॥

तद्युक्तमखिलं वस्तु व्यवहारस्तदन्वितः ॥ तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म क्षीरे सर्पिरिवाखिले ॥ ८९ ॥

तद्युक्तमिति ॥ तिस सच्चिदानंद ब्रह्मके रूप करिके युक्त संपूर्ण घटपटादि पदार्थ अस्ति भाति प्रियरूप करिके प्रकाशमान होते हैं व्यवहार कहे वचन, दान, गमन, विसर्ग, आनंद क्रिया सच्चिदानंदरूप ब्रह्मकरिके युक्त व्यवहार सिद्ध होता है. "सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्" इति भगवद्वचनात्, तातें सर्व पदार्थनविषे गत और तिस करिके युक्त संपूर्ण व्यवहार होते

हैं; जैसे सर्पि जो घृत है, जो सर्वत्र दुग्धविषे अभेदरूपकरिके व्याप्त है, और तिसकरिके दुग्धविषे मधुरतादिक गुण भी हैं, तैसे सर्व वस्तुनविषे ब्रह्म अभेदरूप होकर व्याप्त है इति ॥ ५९ ॥

इस प्रकार प्रपंचविषे परमात्माकी अनुगतता भी है; परंतु तिस प्रपंचके धर्मनविषे ब्रह्मका स्पर्श नहीं. काहेतें, असंग है, यह कहते हैं ॥

अनण्वस्थूलमह्रस्वमदीर्घमजमव्ययम् ॥ अरूपगुणवर्णाख्यं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत ॥ ६० ॥

अनण्विति ॥ शंका–सर्वगत जो आत्मा है सो अणुप्रमाण है, और श्रुति भी कहती है. एक अणु आत्मा जाननेके योग्य है.

उत्तर–आत्मा अणुमात्र नहीं, और जो श्रुति कहती है आत्मा अणुमात्र है, सो श्रुतीका तात्पर्य यह है, की आत्माका स्वरूप जाननेकों

दुर्विज्ञेय अर्थात् अतिकठिन है. और श्रुतीका तात्पर्य यह नहीं, की आत्मा अणु है इति ॥

शंका– आत्मा अणुप्रमाण नहीं है, तौ न होउ पर महान् तौ है, और श्रुति भी कहती है, आत्मा महानतें भी महान् है ॥

उत्तर– आत्मा स्थूल नहीं इस कारणतें आत्मा महान् नहीं. जो महा प्रमाणवाले स्थूल घटपटादि पदार्थ हैं, सो अनित्य हैं, जड होनेतें और श्रुतीका तात्पर्य यह है, की आत्माकी सर्वके अधिष्ठानतारूप होनेतें सर्वतें श्रेष्ठता है, महान् पदका परिमाणसाधक अर्थ नहीं, और अन्हस्व कहे आत्मा न्हस्व परिमाणतें रहित है. अदीर्घ कहे दीर्घ परिणामरहित है, ऐसे श्रुति-प्रतिपादित जो अज कहे जन्मतें रहित, अव्यय कहे नाशरहित, अरूप कहे सत्त्वादि परिणाम-रहित, और ब्राह्मणादि वर्णरहित ब्रह्म है. तिसकी निश्चे करै मुमुक्षु इति ॥ ६० ॥

यद्भासा भासतेऽर्कादिर्भास्यैर्यत्तु न भास्यते ॥ येन सर्वमिदं भाति तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ६१ ॥

यद्भासेति ॥ जिस ब्रह्मके भासा कहे अलौकिक तेजकरिके सूर्यादि भास्यते कहे प्रकाशमान् होते हैं, और सूर्यादिकी भास्य कहे प्रकाशतें जो नहीं प्रकाशता, और जिस ब्रह्मविषे सूर्य, चंद्रमा, विजुली आदिकका प्रकाश है नहीं, तौ अग्निकी कौन गिनती है ? और जिस ब्रह्मकी प्रकाशकरिके सूर्यादिक प्रकाशते हैं, और संपूर्ण जगत् प्रकाशमान होता है तिस ब्रह्मकी निश्चै करना इति ॥ ६१ ॥

इस प्रकार विदेहकैवल्यकेविषे जिस रूपकरिके विवेकी अस्थित होता है, तिस ब्रह्मका निरूपण किया. अब परमपुरुषार्थकी हेतुता फेरि तत्त्ववेत्ताकी निश्चैकों दिखाते हैं ॥

स्वयमंतर्बहिर्व्याप्य भासयन्नखि-
लं जगत् ॥ ब्रह्म प्रकाशते वन्हि-
प्रतप्तायसपिंडवत् ॥ ६२ ॥

स्वयमिति ॥ तीनि श्लोकनकरिकै पर कहे परमात्मा संपूर्ण जगतके बाहर भीतर व्यापक भासयत् कहे प्रकाशता है. जैसे तप्त लोहके पिंडविषे व्याप्त बाहर भीतर अग्नि प्रकाशता है, तैसे चराचर नामरूप दृश्य जगतके बाहर भीतर प्राप्त परमात्माहीं अस्ति, भाति, प्रियरूपकरिकै अर्थात् सत्ता, चेतनता और आनंदरूपताकरिकै प्रकाशता है. यह भाव है इति ॥ ६२ ॥

जगद्विलक्षणं ब्रह्म ब्रह्मणोऽन्यन्न
किंचन ॥ ब्रह्मान्यद्भाति चेन्मि-
थ्या यथा मरुमरीचिका ॥ ६३ ॥

जगदिति ॥ असत् जड दुःखरूप अविद्या कल्पित जो जगत् है, तिसतें विपरीत सत् चित्

आनंदस्वरूप ब्रह्म भिन्न है, तिस कारणतें ब्रह्मतें अन्यत् कहे भिन्न किंचित् भी कछु है नहीं, और ब्रह्मतें भिन्न जो कछु पदार्थ. प्रतीत होते हैं, सो मृगतृष्णाके जलवत् योंहीं मिथ्या प्रतीत होते हैं. वास्तव कछु है नहीं इति ॥ ६३ ॥

सो प्रत्यक्ष फिरि भी कहते हैं ॥

दृश्यते श्रूयते यद्यद्ब्रह्मणोऽन्यन्न तद्भवेत् ॥ तत्त्वज्ञानाच्च तद्ब्रह्म सच्चिदानंदमद्वयम् ॥ ६४ ॥

दृश्यत इति ॥ जो नेत्रोंकरिके देखते हैं, और जो कर्णोंकरिके सुनते हैं, और मनकरिके स्मरण अर्थात मनन करते हैं, और वानीकरिके जो कहते हैं, सो संपूर्ण सच्चिदानंद अद्वैत ब्रह्मही हैं, ब्रह्मतें भिन्न और कछु है नहीं, ऐसे तत्त्वज्ञान-करिके तत्त्ववेत्ता पुरुष जानते हैं. यह भाव है इति ॥ ६४ ॥

शंका— सच्चिदानंद ब्रह्मरूप तुम सर्व जगत-कों कहते हो, तो सर्वत्र देखि काहे नहीं परता.

उत्तर— सच्चिदानंद ब्रह्म सर्वगत भी है, परंतु तत्त्वज्ञानदृष्टिवाले पुरुष देखते हैं, अज्ञानदृष्टिकरिके देखनेकों ब्रह्म दुर्दर्श्य अर्थात् देखनेकों दुर्लभ है. यह कहते हैं ॥

सर्वगं सच्चिदात्मानं ज्ञानचक्षुर्निरीक्षते ॥ अज्ञानचक्षुर्नेक्षेत भास्वंतं भानुमंधवत् ॥ ६५ ॥

सर्वगमिति ॥ सत् चित् आनंद आत्मा सर्वगत भी है. पर तिसकों ज्ञानरूपी नेत्रवाले पुरुष देखते हैं. श्रुति भी कहती है, की नेत्रोंकरिके आत्माका ग्रहण नही होता, और वानीकरिके कहा नही जाता. मनकरिके मनन नहीं होता, और नामरूप देवतनके निमित्त तपकरिके अथवा कर्म शुभाशुभ करिके प्राप्त नहीं होता. के-

वल ज्ञानके प्रसादकरिके विशुद्धसत्वद्वारा विवेकरू-
प नेत्रोंतें निष्कल परमात्मा स्वरूपकों विवेकी पुरु-
ष देखते हैं. और अनादि अविद्याकरिके आवृत हु-
ई नेत्रोंकी दृष्टि जिनकी, ऐसे जो हैं अज्ञानी, सो
साक्षात्कार प्रकाशमान साक्षी अपने आत्मास्व-
रूपकों नहीं देखते. जैसे प्रत्यक्ष प्रकाशमान सूर्य-
कों नेत्रहीन पुरुष नहीं देखते. तैसे विवेकरूप नें-
त्रोंतें रहित पुरुष आत्मास्वरूपकों नहीं देखि
शकता इति ॥ ६५.॥

शंका—ज्ञानरूपी नेत्रवाले पुरुषने विवेक-
के बलकरिके देहइंद्रियादिक विषयोंविषे अध्यास-
लक्षण मलकों दूरि भी करता है. पर पूर्वजन्म-
के अध्यासतें संसाररूपी वासनाके वशीभूत हो-
कर फेरि भी अहं मनुष्य, ऐसा देहीका अभिमा-
नरूप बंधन प्रतीत होता है, तो कैसे स्वरूप-
स्थितीकों शुद्ध सत्वद्वारा तुम मुक्ति कहते हो,
तातें तुह्मारा कहना अयुक्त है. तहां कहते हैं ॥

श्रवणादिभिरुद्दीप्तो ज्ञानाग्निप-
रितापितः ॥ जीवः सर्वमलान्मु-
क्तः स्वर्णवद्द्योतते स्वयम्॥६६॥

श्रवणादिभिरिति ॥ श्रवण, मनन, निदि-
ध्यासनकरिकें उत्पत्ति भई अति उत्कृष्ट प्र-
काशमान जो अग्नि, तिसकरिकें परितप्त हुवा अ-
र्थात् दग्ध हुवा जीवका संपूर्ण मल कहे संसार-
भूत अज्ञान, तिसका कार्य जो है जगत, तिसतें
मुक्त कहे रहित पुरुष सुवर्णकी तरह आपहीं
शुद्ध प्रकाशमान होता है. तात्पर्य यह स्वस्वरू-
प सच्चिदानंदलक्षण आत्मास्वरूप प्रकाशता है.
तिस पुरुषका अहं मनुष्य ऐसा अभिमान फिरि
किसी तरहतें नहीं होता इति ॥ ६६ ॥

शंका– इस प्रकार शुद्ध करा हुवा आत्मा
कैसा होता है, और कहां उदय अर्थात् प्रगट हो-
ता है. और किसकों प्रकाशता है. तहां कहतें हैं॥

हृदाकाशोदितो ह्यात्मा बोधभानुस्तमोऽपहृत् ॥ सर्वव्यापी सर्वधारी भाति सर्वं प्रकाशते ॥६७॥

हृदाकाशेति ॥ इस प्रकार शुद्ध करा हुवा जीव आत्मा और परमात्माकी एकतारूप लक्षणकरिके लक्षित हुवा, सो बोधरूप सूर्य अर्थात् ज्ञानस्वरूप सूर्य, हृदयरूप आकाशमें प्रगटवा प्राप्त होता है, सो सर्वको भाति कहे प्रकाशता है, और आत्मा आप स्वयंप्रकाश है ॥

शंका—हृदयरूप आकाशविषे प्रगट होता है, सो हृदयाकाशपरिच्छिन्न अर्थात् नाशमान है, तो तिसके साथ आत्मा भी परिच्छिन्न मानना चाहिये, तहाँ कहते है ॥सर्वव्यापीति ॥ आत्मा सर्व प्रपंचविषे व्यापक हैं, और सर्वधारी कहे अज्ञानकार्य जगत्का अधिष्ठान है. तात्पर्य यह—कार्यकरिके कारणकी हानि नहीं होती इति ॥६७॥

अव सर्व पुरुषोंको अपने आत्मस्वरूपतत्त्वकों तीर्थरूप करिके वरनन करते हैं. तिसके सेवनतें जो फल होता है, सो सर्व तीर्थके फलका शिरोमणि है. तात्पर्य यह– सर्व कर्म और सर्व तीर्थ और सर्व देवतनका सेवनरूप जो फल हैं, तिन सर्व फलोंका शिरोमणि अद्वैत आत्माही फल है. तिसकी सेवा अवश्य करनीं चाहिये. काहेतें, सेवनीय अवश्य आत्माहीं है जिसके सेवनतें कोई सेवा विशेष नहीं रहती, सो कहते हैं ॥

शंका– स्वाभाविक पापनके दूर करनेके अर्थ तत्त्ववेत्ता भी प्रयागादि तीर्थनकी यात्राका उद्यम करते हैं, तुम कैसे सर्व मलतें रहित स्वर्णवत् प्रकाशमान आत्माकों कहते हो ?

उत्तर–अपनी आत्मास्वरूप तीर्थविषे स्नान करनेवाले पुरुषकों कछु भी कर्त्तव्य है नहीं, यह कहते हैं ॥

दिग्देशकालाद्यनपेक्ष्य सर्वगं शी-
तादिहृन्नित्यसुखं निरंजनम्॥ यः
स्वात्मतीर्थं भजते विनिष्क्रियः स
सर्ववित्सर्वगतोऽमृतो भवेत्॥६८॥

दिग्देशेति॥ जो सर्व क्रियोंतें रहित परमहंस अपने आत्मास्वरूप तीर्थविषे स्नान करनेवाले अर्थात् भजनेवाले हैं. तात्पर्य यह—जो एकाग्र-चित्त होकर आत्मतत्त्वकों विचार वा सेवन मनन करते हैं, सोई सर्ववेत्ता और सर्वज्ञ कहे सर्वके जाननेवाले सर्वगत कहे व्यापक परमात्मास्वरूप, सो अमृत कहे मुक्त हैं. कैसा है आत्मारूप तीर्थ, दिग् कहे पूर्वादि दिशा और वैकुंठ, कैलास, मृ-त्युलोकादि देश और भूत भविष्य वर्त्तमानकाल आदिकी इच्छातें रहित है. काहेतें, सर्वगत कहे व्यापक है. इस कारणतें देश कालादिकी इच्छा आत्मतीर्थविषे नहीं. और प्रयागादि तीर्थ संपूर्ण

देशकालवाले हैं. और परिच्छिन्न भी हैं. तातें इनतें आत्मतीर्थ भिन्न है, फेरि कैसा है आत्मतीर्थ, शीतादिहृत् कहे शीत उष्णादि द्वंद्व दुःखोंके हरनेवाला है, जिसतें आत्मा नित्य सुख सर्वदा सुखस्वरूपही है, और प्रयागादि तीर्थ, शीत उष्णादि द्वंद्व दुःखोंके देनेवाले हैं, और महामारी परती है, तो मूलतेंहीं विनाश करते हैं. फेरि कैसा है आत्मा, निरंजन कहे मायाका जो है कार्य जगतरूप मलतें रहित है, और प्रयागादि तीर्थ कीचकादों सहित हैं. तातें मुमुक्षु पुरुषकों स्वात्मतीर्थ अवश्य सेवनी है, दूसरा कर्त्तव्य और कोई है नहीं. तदुक्तं महाभारते " आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा सत्यावर्ता शीलतटा दयोर्मिः ॥ तत्राभिषेकं कुरु पांडुपुत्र न वारिणा शुद्ध्यति चांतरात्मा ", इति ॥ भागवतेऽपि "साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः॥तीर्थीकुर्वंति तीर्थानि स्वांतःस्थेन गदाभृता ॥१॥ नह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिला-

मयाः । ते पुनंत्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः" इति॥ अत्र साधवःस्वात्मतीर्थे कृतस्नाना इत्यर्थः "स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिले दत्ता च सर्वावनिर्यज्ञानां च कृतं सहस्रमखिला देवाश्च संपूजिताः॥ संसाराच्च समुद्धृताः स्वपितरस्त्रैलोक्यपूज्योऽप्यसौ यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्यं मनः प्राप्नुयात्॥ कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुंधरा पुण्यवती च तेन॥ अपारसंवित्सुखसागरेऽस्मिन् लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥ मम भवेद्गुरूणां पदकंजयोरिह परत्र गतिः पदयोर्नतिः॥ वसति यत्र विमुक्तिरहर्निशं तदुपमां कथयामि कथं गिरा ॥ ६८ ॥

इतिश्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचार्यकृत आत्मबोधः समाप्तः ॥

इतिश्रीमन्माधवानंदपरमहंसपरिव्राजविरचिता (आत्मबोधाख्यप्रकरणस्य) सुबोधिनी भाषाटीका समाप्ता ॥ शुभं भवतु ॥

विक्रीचीं पुस्तकें.

संस्कृत.

	कि. रु. आ.	ट. आ.
कालिदासकृत मेघदूत (मल्लिनाथकृत टीका.) ...	०—८	१
कालिदासकृत कुमारसंभव (मल्लिनाथकृत टीका.)...	२—०	३॥
कालिदासकृत रघुवंश (मल्लिनाथकृत टीका.) ...	२—०	३॥
कालिदासकृत अभिज्ञानशाकुंतल नाटक (राघवभट्टकृत टीका व इंग्रजी टीपा.) ...	२—०	४
कालिदासकृत अभिज्ञानशाकुंतल नाटक (राघवभट्टकृत-टीका.)	१—४	३
अनंभट्टकृत तर्कसंग्रह (टी. व इंग्रजी भाषां०) ...	०—६	१
शिवगीता (साधी) मोठे टैपांनीं छापलेली. ...	०—४।	१
शिवगीता (रेशमी पुठ्याची) मोठे टैपांनीं छा० ...	०—६।	१
गणेशगीता (साधी) मोठे टैपांनीं छा० ...	०—२।	१
गणेशगीता (रेशमी पुठ्याची) मोठे टैपांनीं छा० ...	०—४।	१
अवधूतगीता (साधी).	०—२॥	॥
अवधूतगीता. (रेशमी पुठ्याची)... ...	०—५	॥
रामगीता. मोठे टैपांनीं छा०	०—।॥	॥
सप्तश्लोकी गीता मोठे टैपांनीं छा०	०—१	॥
शंकरानंदी गीता.	५—०	६
श्रीमद्भगवद्गीता (फारच बारीक टैपानीं छा०) ...	०—५	॥
पंचरत्नी गीता (फारच बारीक टैपानीं छा०) ...	०—७	१
अध्यात्मरामायण (फारच बारीक टैपानीं छा०) ...	०—१२	१॥
सप्तशती प्रयोगासहित (फारच बारीक टैपांनीं छा०)	०—९	१
विष्णुसहस्रनाम (साधें) मोठे टैपांनीं छापलेलें. ...	०—१।	॥
विष्णुसहस्रनाम (रेशमी पुठ्याचें) मोठे टैपांनीं छा०	०—२॥	॥
कृष्णसहस्रनाम (रेशमी पुठ्याचें) मोठे टैपांनीं छा०	०—४	॥

	कि.रु.आ.	ट. आ.
कृष्णसहस्रनाम (साधें) मोठे टैपांनीं छापलेलें ...	०–२	॥
सूर्यसहस्रनामावळी. (रेशमी पुठ्याची) मोठे टैपांनीं छा०	०–३	॥
सूर्यसहस्रनामावळी. (साधी). मोठे टैपांनीं छापलेली	०–१॥	॥
गोपालसहस्रनाम (रेशमी पुठ्याचें) मोठे टैपांनीं छापलेलें.	०–४॥	॥
गोपालसहस्रनाम (साधें) मोठे टैपांनीं छापलेलें...	०–२।	॥
विष्णुसहस्रनामावळी (साधी) मोठे टैपांनीं छा०...	०–१।	॥
विष्णुसहस्रनामावळी (रेशमी पुठ्याची) मोठे टैपांनीं छा०	०–२॥	॥
शिवसहस्रनामावळी (रेशमी पुठ्याची) मोठे टैपांनीं छा०	०–३	॥
शिवसहस्रनामावळी (साधी) मोठे टैपांनीं छापलेली.	०–१॥	॥
गणेशसहस्रनामावळी. मोठे टैपांनीं छापलेली. ...	०–१॥	॥
ब्रह्मनामावळी. (मोठे टैपांनीं छापलेली) ...	०–०।	॥
मनुस्मृति (कुल्लूकभट्टकृत टीकेसहित) ...	२–८	४॥
उदासीनसाधुस्तोत्र	०–५	१
अष्टाध्यायीसूत्रपाठ.	०–५	॥
इसापनीतिकथा (दोन भाग) मराठी ...	०–६	॥
धुंडिराजकृत अभिनवकादंबरी.	०–६	॥
मुंबई युनिव्हर्सिटीचे संस्कृत म्याट्रिक्युलेशन पेपर व त्यांचीं उत्तरें सन १८६२–१८८२. ...	१–१	१
रसिकाष्टकें.	०–॥	॥
प्रियदर्शिका.	०–८	१
सिद्धांतकौमुदी.	२–८	४
लघुकौमुदी.	०–६	१
लक्ष्मीस्तोत्र...	०–॥	॥
विद्यारण्यस्वामिकृत अनुभूतिप्रकाश... ...	२–४	२
नारायणपंडितकृत हितोपदेश.	०–८	१
नारायणपंडितकृत हितोपदेश. (इंग्रेजी टीपांसहित.)...	१–०	१॥

हीं पुस्तकें "निर्णयसागर" छापखान्यांत विकत मिळतील.

अथ

श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितः

तत्त्वबोधः ।

माधवानन्दविरचितया हिंदुस्थानीभाषाटीकया समेतः ।

स च

मुम्बापुर्यां

निर्णयसागरयन्त्रालयाधिपतिना स्वकीये मुद्र-णयन्त्रे मुद्रयित्वा प्राकाश्यं नीतः ।

शकाब्दाः १८११ संवत् १९४६.

अथ

श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितः

तत्त्वबोधः ।

माधवानन्दविरचितया हिंदुस्थानीभाषाटीकया
समेतः ।

स च

मुम्बापुर्यां

निर्णयसागरयन्त्रालयाधिपतिना स्वकीये मुद्र-
णयन्त्रे मुद्रयित्वा प्राकाश्यं नीतः ।

शकाब्दाः १८११ संवत् १९४६.

प्रस्तावना.

यह तत्त्वबोधप्रकरण श्रीमच्छंकराचार्ययतीश्वरकृत वेदांतप्रकरण संस्कृतवार्तिक सो यह मुमुक्षु पुरुषोंके अर्थ बहुत श्रेष्ठ है, काहेते की इसको प्रथम गुरुद्वारा अच्छीप्रकार जाननेते वेदांतविषै पुरुषोंकी प्रवृत्ति भलेप्रकारतें होती है, और यह प्रकरण मुक्तिमार्गमें आरूढ होनेकी प्रथम निसेनीका एक पाद है. इस कारणते हमने इसकी भाषाविषे सीधी सरल टीका करी है. जिसमे हरएकके समझनेमें भलीप्रकारतें आवै और जहांजहांपर इसमे कठिन पद है तहांतहां तिसपदनका तात्पर्यरूप सिद्धांत भलीप्रकारतें हमनें इसमें प्रकाश करा है. काहेतें इस समयमें विद्या और धर्मके न्यूनताकरिकै और अधर्मकी वृद्धि होनेतें पुरुषोंकी बुद्धि स्थूलताकों प्राप्त है, इस कारणतें इस ज्ञानकांडमें पुरुषोंकी प्रवृत्ति संस्कृतमें पदार्थनके जाननेविना होती नहीं, और इस ज्ञानकांडमें शुद्ध अंतःकरणवालेका अधिकार है, तातें जो पुरुष संस्कृत विद्याकों अच्छीतरहसें नहीं जानते तिनके अर्थ यह भाषाटीका अति उत्तम है, और विवेकी पुरुषोंतें हमारी यह प्रार्थना है, की जो इसमें बुद्धीकी चपलतातें विपरीत अर्थ प्रतीत हो, सो कृपाकरिके सुधारि देवै और लेखक लोगनको भी यह योग्य हैकी इसमें जितने अक्षर और पद जहांपर जैसे होइ वैसाही लिखैं, जिसमे कोई पदार्थनका उलटपलट नहीं होवै. काहेतें की भाषाग्रंथोंको हरएक देशके लेखकोंनें नष्ट करिदिया है, यथार्थग्रंथकर्ताकी परपाटी रही नहीं इति ॥

॥ ॐश्रीगणेशाय नमः ॥

अथ तत्त्वबोधकी भाषाटीका लिख्यते ।

॥ दोहा ॥

श्रीगुरुगौरिगनेशके, वंदहुं पद करजोरि ॥ प्राकृत परम विचित्र यह, टीका करत निहोरि ॥ १॥ श्रीशंकरआनंदकुल, जिज्ञासुनके हेत ॥ ताकी मैं भाषाविषे, टीका करत सचेत ॥ २ ॥ वासुदेवपदपंकरुह, गुरुमूरति नररूप ॥ श्रीशंकरके चरणयुग, वंदहुं परम स्वरूप ॥ ३ ॥ जाके सुमिरनतें मिटत, महाव्याधि भवरूप ॥ दुःखहरण सब सुखकरन, यतिराजनके भूप ॥ ४ ॥

वासुदेवेन्द्रयोगीन्द्रं नत्वा ज्ञानप्रदं गुरुम् ॥ मुमुक्षूणां हितार्थाय तत्त्वबोधोऽभिधीयते ॥ १ ॥

टीकाः—मैं जो हूं शंकराचार्य सो "नत्वा ज्ञानप्रदं गुरुम्" 'ज्ञानप्रदं' कहे ज्ञानके देनेवाला जो है गुरु तिसकों 'नत्वा' कहे नमस्कार करिकै मुमुक्षु जो हैं मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुष, तिनके हितके अर्थ तत्त्वबोध कहे पृथिवी,जल,तेज,वायु,आकाश, तिनका कारण, कार्य अरु स्वरूप जिसतें जाना जाता है तिसका प्रकरण 'अभिधीयते' कहे कहते हैं. सो गुरु कैसा है ? वासुदेव कहे जो सर्वभूतनकेविषे अंतरजामी अधिष्ठानचेतनस्वरूप वास करता है, अर्थ यह वसता है 'वसंत्यस्मिन्भूतानीति वासुदेवः' इति श्रुतेः गुरुगीतामेंभी कहा है—"नित्यं शुद्धं निराभासं निराकारं निरंजनम् ॥ नित्यं बोधं चिदानंदं गुरुं ब्रह्म नमाम्यहम् ॥ १ ॥ गूढा विद्या योगमाया देहमज्ञानसंभवः ॥ उदयं स्वप्रकाशेन गुरुशब्देन कथ्यते ॥ २ ॥ " अरु 'इदं' कहे परम श्रेष्ठ जिसतें परे जगतविषे और कोई दूसरा श्रेष्ठ है न-

हीं और गुरु कैसा है ? ' योगीन्द्र, कहे योगिराजनकाभी राजा है; यह अर्थ है ॥ १ ॥

साधनचतुष्टयसंपन्नाऽधिकारिणां मोक्षसाधनभूतं तत्त्वविवेकप्रकारं वक्ष्यामः ॥

टीकाः—साधनचतुष्टयसंपन्न कहे साधन जो हैं चारि प्रकारके, तिनकरिकै संयुक्त जो हैं अधिकारी पुरुष, तिनके अर्थ मोक्षसाधनभूत कहे मोक्षका साधन जो है तत्त्वविवेक कहे पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश ये पंचमहाभूत, तिनके साथ एकता, अर्थात् एकमें मिलिकै अभेद सच्चिदानंद ब्रह्म जगतका उपादानकारण है, तिसकी जीवसंज्ञा है, तिसकों पंचभूतनतें जुदा करना, तिसका जो है प्रकार कहे रीति सो ' वक्ष्यामः ' कहे कहतेहैं वा कहैंगे; अर्थ यह है ॥

साधनचतुष्टयं किम् ॥ नित्यानित्य-

वस्तुविवेकः ॥ १ ॥ इहामुत्रार्थफलभोगविरागः ॥ २ ॥ शमादिषट्संपत्तिः ॥ ३ ॥ मुमुक्षुत्वं चेति ॥ ४ ॥

टीकाः-प्रश्न-साधन च्यारिप्रकारके कौन कौन हैं ? उ०-पहिला साधन नित्य अरु अनित्य वस्तुका विवेक है॥१॥ दूसरा साधन लोकपरलोकका विराग है ॥२॥ तीसरा साधन शमादि छे संपत्ती हैं ॥ ३॥ अरु चौथा साधन मुमुक्षुता है ॥ ४॥

नित्यानित्यवस्तुविवेकः कः । नित्यवस्त्वेकं ब्रह्म तद्व्यतिरिक्तं सर्वमनित्यं । अयमेव नित्यानित्यवस्तुविवेकः ॥

टीकाः-प्र०-नित्य अरुअनित्यवस्तुका विवेक किसकों कहते हैं उ०- नित्य कहे सत्य एक ब्रह्मवस्तु है, 'तद्व्यतिरिक्तं' कहे तिस ब्रह्मतें भिन्न

सर्व जगत् 'अनित्यं' कहे असत् अर्थात् मिथ्या है, ऐसे निश्चयका नाम नित्यानित्यवस्तुका विवेक है, इसकों नित्यानित्यवस्तुविवेक कहते हैं, सो यह पहिला साधन सर्व साधनोंका मूलकारण है.

विरागः कः । इह स्वर्गभोगेषु इच्छाराहित्यम् ।

टीकाः—प्र०—विराग किसकों कहते हैं ? उ०—'इह' कहे यह लोक वा देह और स्वर्गके भोगोंविषे इच्छारहित, अर्थ यह—इसलोक और परलोकके विषयभोगोंकी वासनाका त्याग करना इसका नाम वैराग्य है, यह अर्थ है ॥

शमादिसाधनसंपत्तिः का । शमो दम उपरमस्तितिक्षा श्रद्धा समाधानं चेति ॥

टीकाः—प्र०—शमादि साधनसंपत्ति कौन कौन हैं ? उ०—शम १, दम २, उपरति ३, तितिक्षा

४, श्रद्धा ५, समाधानता ६, ये छे संपत्ती हैं, इनका अर्थ स्पष्ट है, इति ॥

शमः कः । मनोनिग्रहः । दमः कः । चक्षुरादिबाह्येन्द्रियनिग्रहः । उपरमः कः । स्वधर्मानुष्ठानमेव । तितिक्षा का । शीतोष्णसुखदुःखादिसहिष्णुत्वम् । श्रद्धा कीदृशी । गुरुवेदांतवाक्यादिषु विश्वासः श्रद्धा । समाधानं किम् । चित्तैकाग्रता ॥

टीकाः—प्र०—शम किसकों कहते हैं? उ०—मनकों निग्रह कहे वश करना, अर्थ यह—मनकों विषयनतें हटाना, इसका नाम शम है. प्र०—दम किसकों कहते हैं? उ०—नेत्रादि बाहिरकी इंद्रियनकों वशी करना, इसका नाम दम है. प्र०—उपरम किसकों कहते हैं? उ०—स्व कहे अपने धर्मका अनु-

ष्ठान करना, अर्थात् चेतनसाक्षी धर्मकी निष्ठा करिकै, 'शब्दस्पर्शादि सर्व विषयनतें चित्तकी निवृत्ती करना. तात्पर्य यह—सर्वविषयनतें चित्तकी निवृत्ति कहे त्याग करना; अर्थ यह—सर्व बाह्यधर्मनतें उपराम कहे निवृत्त होना इसका नाम उपरति है. प्र०—तितिक्षा किसकों कहते हैं? उ०—शीत, उष्ण कहे सरदी और गरमी सुखदुःखादि अरु मान अपमान आदिकों धीरज करिकै सहना, इसका नाम तितिक्षा है. प्र०—श्रद्धा किस प्रकारकी होती है? उ०—गुरु और वेदांतवाक्यनविषे विश्वास करनाकी, जो गुरु और वेदांत कहते हैं सो यथार्थ है, इसका नाम श्रद्धा है. प्र०—समाधानता किसकों कहते हैं? उ०—चित्तकी एकाग्रता कहे गुरु और वेदांतके वाक्यनकों आलसतें रहित चित्तकों, स्थिर करिकै प्रीतिपूर्वक सुनाना इसका नाम समाधानता है, सो यह तीसरा साधन है॥

मुमुक्षुत्वं किम् । मोक्षो मे भूया-
दितीच्छा ॥

टीकाः—प्र०—मुमुक्षुता किसकों कहते हैं? उ०—इस संसारके दुःखनतें मेरी मोक्षकहे निवृत्ति होइ, ऐसी इच्छाका नाम मुमुक्षुता है, सो यह चौथा साधन है.

एतत्साधनचतुष्टयं ॥ ततस्तत्त्वविवेक-स्याधिकारिणो भवंति । तत्त्वविवेकः कः । आत्मा सत्यस्तदन्यत् सर्वं मि-थ्येति । आत्मा कः ॥

टीकाः—ये चारि प्रकारके साधन हैं तिनकों प्रथम यत्नपूर्वक साधन करे तब तत्त्वविवेकका अधिकारी होता है- प्र०—तत्त्वविवेक किसकों क-हते हैं? उ०—आत्मा कहे अपने आप सत्य है तिस-तें 'अन्यत्' कहे भिन्न जो है नामरूप द्वैतजगत,

सो मिथ्या है, ऐसे निश्चयका नाम तत्त्वविवेक है.
प्र०—आत्मा किसकों कहते हैं यह अर्थ है.

स्थूलसूक्ष्मकारणशरीराद्व्यतिरिक्तः पंचकोशातीतः सन् अवस्थात्रयसाक्षी सच्चिदानंदस्वरूपः सन् यस्तिष्ठति स आत्मा ॥

टीकाः—उ०—स्थूल, सूक्ष्म अरु कारण शरीरतें अतिरिक्त कहे जुदा अरु पंचकोशनतें परे सो अवस्था तीनिका साक्षी अर्थात् देखनेवाला, तिनतें भिन्न सत् चित् आनंद स्वरूप कूटस्थ जो 'तिष्ठति' कहे तीनि शरीरनके बाहिरभीतर स्थित है, सो आत्मा है इति ॥

स्थूलशरीरं किम् । पंचीकृतपंचमहाभूतैः कृतं सत्कर्मजन्यं सुखदुःखादिभोगायतनं शरीरं अस्ति जायते वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते

विनश्यतीति षड्विकारवदेतत्स्थूलशरीरम् ॥

टीकाः-प्र०-स्थूल शरीर किसकों कहते हैं? उ०-जो पंचीकृत पंचमहाभूतनतें पुण्यपापरूप कर्मजन्य अर्थात् उत्पत्ति, सो कर्मनके फल जो हैं सुख अरु दुःखरूप भोग, तिनका यतन कहे स्थान वा घर यह स्थूलशरीर जो वर्त्तमानकालमें स्थित है, सो जायते कहे माताके गर्भतें उत्पन्न होता है और उत्पत्ति भये पीछे माताका दूध पीके बढता है, और बढिके अन्नादिके भक्षणतें पलता है, ओर परिणमते कहे कुमार युवा आदि अवस्थावाला होता है, फेरि अपक्षीयते कहे वृद्ध होजाता है, अरु अंतमें नाश होता है ऐसे, षट् विकारवत् आदिअंतवाला यह स्थूल शरीर है। इति ॥

सूक्ष्मशरीरं किम् । अपंचीकृतपंचमहाभूतैः कृतं सत्कर्मजन्यं सुखदुः-

खादिभोगसाधनं पंचज्ञानेन्द्रियाणि पंच कर्मेन्द्रियाणि पंचप्राणादयः मनश्चैकं बुद्धिश्चैका एवं सप्तदशकलाभिः सह यत्तिष्ठति तत्सूक्ष्मशरीरम् ॥

टीकाः–प्र०–सूक्ष्मशरीर किसकों कहते हैं? उ०–जो अपंचीकृत पंचमहाभूतनतें सत्कर्मजन्य कहे सत्कर्मनतें उत्पत्ति जिसकी, सुखःदुखभोगनका जो साधन, सो पंच ज्ञानइंद्री पंच कर्मइंद्री, अरु पंच प्राण,एक मन,एक बुद्धि, इसप्रकार सत्तरहकलाकरिके 'सह' कहे सहित जो 'तिष्ठति' कहे स्थित है सो सूक्ष्मशरीर है। इति ॥

श्रोत्रं त्वक् चक्षुः रसना घ्राणं इति पंच ज्ञानेन्द्रियाणि। श्रोत्रस्य दिग्देवता। त्वचो वायुः। चक्षुषः सूर्यः। रसनाया वरुणः। घ्राणस्य अश्विनौ इति

ज्ञानेन्द्रियदेवताः। श्रोत्रस्य विषयः शब्दग्रहणम्। त्वचो विषयः स्पर्शग्रहणम्। चक्षुषो विषयः रूपग्रहणम्। रसनाया विषयः रसग्रहणम्। घ्राणस्य विषयो गंधग्रहणम् इति ॥

टीकाः—श्रोत्र कहे कान त्वक् कहे चर्म, नेत्र, जीभ, नासिका, ये पंच ज्ञानइंद्रीय हैं, श्रोत्रनके देवता दशदिशा, चर्मका देवता वायु,नेत्रोंका सूर्य, रसनाका वरुण, नासिकाके देवता अश्विनीकुमार; ये पंच ज्ञानइंद्रियनके पंच देवता हैं. ओर श्रोत्रोंका विषय शब्दकों ग्रहण करना, चर्म इंद्रीका विषय स्पर्शकों ग्रहण करना, नेत्रोंका विषय रूपकों ग्रहण करना, रसनाका विषय रस ग्रहण करना, नासिकाका विषय गंधकों ग्रहण करना। इति ॥

वाक्पाणिपादपायूपस्थानीति पंचकर्मेंद्रियाणि ॥ वाचो देवता व-

न्हिः॥हस्तयोरिंद्रः॥पादयोर्विष्णुः। पायोर्मृत्युः । उपस्थस्य प्रजापतिः इति कर्मेन्द्रियदेवताः॥ वाचो विषयः भाषणम् । पाण्योर्विषयः वस्तुग्रहणम् । पादयोर्विषयः गमनम् । पायोर्विषयः मलत्यागः। उपस्थस्य विषयः आनंद इति॥

टीकाः—वानी, हाथ, चरन, गुदा, लिंग, ये पंच कर्मइंद्री हैं. वानीका देवता वह्नि अर्थात् अग्नि, हाथनका देवता इंद्र है, चरननका देवता विष्णु, गुदाका देवता यमराज, लिंगका देवता प्रजापति ब्रह्मा, ये पंच कर्मइंद्रिनके पंच देवता हैं, वानीका विषय भाषण अर्थात् बात करना, हाथनका विषय वस्तुका लेना देना, चरननका विषय गमन करना, गुदाका विषय मल त्यागना, लिंगइंद्रीका विषय विषयानंदकरना, ये पंच कर्मइंद्रिनके पंच विषय हैं इति॥

कारणशरीरं किम् । अनिर्वाच्यानाद्यविद्यारूपं शरीरद्वयस्य कारणमात्रं सत् स्वस्वरूपाज्ञानं निर्विकल्पकरूपं यदस्ति तत्कारणशरीरम् ॥

टीकाः—प्र०—कारणशरीर किसकों कहते हैं? उत्तर—अनिर्वाच्य कहे जो सत्य झूठ नहीं कही जाई, काहेतें जो मायाकों झूठी कहे तौ जगतकी उत्पत्ति नहीं बनेगी, अरु जगतकों माया उत्पन्न करती है, अरु सत्य कहे तो ज्ञानतें नाश होती है, जैसे रस्सीविषे सर्पकों झूठा कहे तौ भयकंपादि होतेहैं सो नहीं हुवा चाहिये, अरु सत्य कहे तौ विचारतें नाश होता है. तातें अनिर्वचनीय है. अर्थ यह—न सत्य है अरु ना झूठ है अरु अनादि कहे उत्पत्तिरहित अविद्या कहे अज्ञान अरु स्थूलसूक्ष्मशरीर दोनोंका कारणमात्र कहे बीज है सो, स्वस्वरूपका अज्ञान निर्विकल्प कहे कल्पनारहित जो रूप है, सो कारणशरीर है, इति ॥

घोर निद्रा आई की बडेही आनंदतें सोया, ऐसे अनुभव करनेका नाम सुषुप्ति अवस्था है. सो इस सुषुप्ति अवस्थामें कारणशरीर आनंदमयकोश सुषुप्ति अवस्था आनंदभोग तिसका अभिमानी प्राज्ञ आत्मा है, अर्थ यह–अपने आनंदस्वरूपके भानरहित अज्ञानका साक्षी तिसतें भिन्न जगत्का कारण यह प्राज्ञ आत्मा ईश्वर है:–"आनंदभुक्चेतोमुखः" इति श्रुतेः॥ इस सुषुप्ति अवस्थामें आनंदका भोगनेवाला केवल आनंदरूप मुख्य चेतनही है, और कोई दूसरा नहीं यह श्रुति कहती है इति ॥

पंच कोशाः के। अन्नमयः प्राणमयः मनोमयः विज्ञानमयः आनंदमयः श्चेति ॥

टीकाः–प्र०–पंचकोश कौन कौन हैं? उ०–अन्नमय १, प्राणमय २, मनोमय ३, विज्ञानमय ४, आनंदमय ५, ये पंचकोश हैं इति ॥

अन्नमयः कः। अन्नरसेनैव भूत्वा अन्नरसेनैव वृद्धिं प्राप्य अन्नरूपपृथिव्यां यद्विलीयते तदन्नमयः कोशः। स्थूलशरीरम् ॥

टीकाः— प्र०—अन्नमय किसकों कहते हैं ?
उ०— अन्नरसकरिके जो होता है अरु अन्नतेंही वधता है अरु अन्नरूप पृथिवीमें लीन होता है, सो अंन्नमय कोश स्थूलशरीर है इति ॥

प्राणमयः कः । प्राणादिपंचवायवः वागादींद्रियपंचकं प्राणमयः ॥

टीकाः—प्र०—प्राणमय किसकों कहते हैं ?
उ०— प्राणआदि कहे प्राण १, अपान २, व्यान ३, उदान ४, समान ५, ये पंच वायु अथवा प्राण अरु वाणी आदि पंच कर्म इन्द्रियसहित प्राणमय कोश होता है, इसका नाम क्रियाशक्ति है. अर्थ

यह– जितनी शरीरमें क्रिया होती हैं, सो इस प्राणमयकोशकी हैं इति ॥

मनोमयः कोशः कः । मनश्च ज्ञानेंद्रियपंचकं मिलित्वा भवति स मनोमयः कोशः ॥

टीकाः– प्र०मनोमयकोश किसकों कहते हैं? उ०–एक मन और श्रोत्रादि पंच ज्ञान इंद्री मिलिके जो होता है सो यह मनोमय कोश है. इसका नाम इच्छाशक्ति है. अर्थ यह–जो जो वस्तुकी इच्छा होती है सो सो मनोमय कोशकों होती है ॥

विज्ञानमयः कः । बुद्धिर्ज्ञानेन्द्रियपंचकं मिलित्वा यो भवति स विज्ञानमयः कोशः ॥

टीकाः–प्र०–विज्ञानमयकोश किसकों कहते हैं? उ०–एक बुद्धि अरु श्रोत्रादि पंच ज्ञानइंद्री मिलिके विज्ञानमय कोश होता है, इसका नाम

ज्ञानशक्ति है. जो कुछ ज्ञात अज्ञात वस्तु है, सो इस विज्ञानमय कोशकों होती है, तातें इसका नाम ज्ञानशक्ति है ॥

आनंदमयः कः। एवमेव कारणशरीरभूताविद्यास्थमलिनसत्त्वं प्रियादिवृत्तिसहितं सत् आनंदमयः कोशः। एतत्कोशपंचकं। मदीयं शरीरं मदीयाः प्राणाः मदीयं मनश्च मदीया बुद्धिर्मदीयं ज्ञानमिति स्वेनैव ज्ञायते। तद्यथा मदीयत्वेन ज्ञातं कटककुंडलगृहादिकं स्वस्माद्भिन्नं तथा पंचकोशादिकं मदीयत्वेन ज्ञातं आत्मा न भवति ॥

प्र०—आनंदमय कोश किसकों कहते हैं? उ०—इसीतरह यह जो कारणशरीरभूत अविद्या है अर्थात् कारणशरीरप्रधान जो है अज्ञान मलिनसत्त्वप्र-

धान. अर्थ यह—रजतमगुणकरिके मलिन जो स-
तोगुणप्रधान प्रियमोदप्रमोदवृत्तिसहित, प्रिय कहे
अभिलषितवस्तुके देखनेतें होता है जो सुख, अरु
मोद कहे अभिलषितवस्तुके प्राप्त होनेतें होता है
जो सुख, अरु प्रमोद कहे अभिलषितवस्तुके भो-
गनेका होता है जो सुख, ऐसी वृत्तिवाला यह आ-
नंदमय कोश है. आनंदकी बहुततातें इसका नाम
आनंदमय है इति. ये जो कोशपंचक हैं तिनके
साथ मिलिके अर्थात् एकता मानिके भ्रमकरिके
आत्मा कहता है. 'मदीयं शरीरं' मेरा शरीर है 'मदी-
याः प्राणाः' मेरे प्राण हैं, 'मदीयं मनः' मेरा मन है,
'मदीया बुद्धिः' मेरी बुद्धि है, 'मदीयं ज्ञानं' मेरा ज्ञा-
न है; ऐसे अपनेकों पंचकोशरूप जानता है, तथा
मदीयत्वे कहे मेरा नहीं जानना चाहिये. काहेतें
कटक कहे कडा वा कंकण कुंडलघरपुत्रक्षेत्रादि
वत् पंचकोश अपनेतें भिन्न हैं तातें पंचकोशन-
कों मदीय कहे मेरे हैं, ऐसा मानना वृथा है. काहेते

आत्मा इन पंचकोशनका साक्षी इनतें भिन्न है, अरु पंचकोशरूप आत्मा नहीं है. अर्थ यह—कोश मायामय कहे मायाकृत हैं, अरु आत्मा मायाका साक्षी मायातें भिन्न अनादि है इति ॥

आत्मा तर्हि कः। सच्चिदानंदस्वरूपः॥

टीकाः—प्र०— तौ फिरि आत्माका स्वरूप कैसा है यह कृपा करिकै कहौ ॥ उ०— आत्मा सत्, चित् और आनंदस्वरूप है ॥

सत्किं । कालत्रयेऽपि तिष्ठतीतिसत्॥ चित्किं। ज्ञानस्वरूपः ॥ आनंदः कः । सुखस्वरूपः ॥ एवं सच्चिदानंदस्वरूपं स्वात्मानं विजानीयात् ॥

टीकाः—प्र०—सत् किसकों कहते हैं ? उ०—जो भूत अरु भविष्य वर्त्तमानकालमें एकरस स्थित रहै, तिसकों सत् कहतेहैं ॥ प्र०—चित् किसकों कहते हैं ? उ०—चित कहते हैं ज्ञानस्वरूपकों.

अर्थ यह–जो घटपयादि पदार्थनका जाननेवाला है अरु साक्षी अनुभवरूप जो संपूर्ण वस्तुनको अनुभव करता, अर्थात् देखताहै, सो चेतनस्वरूप साक्षात् ज्ञान है. प्र०–आनंद किसकों कहते हैं? उ०जो सर्व दुःखनतें रहित प्रपंचातीत अधिष्ठान कूटस्थ ब्रह्म है, सो आनंदस्वरूप है, इस प्रकारका जो सच्चिदानंद ब्रह्महै, तिसकों स्वात्मानं कहे अपने आपकों जानै. अर्थ यह–सच्चिदानंदस्वरूप ब्रह्म अपने आपही है अरु अपनेतें भिन्न सर्व नामरूप दृश्य जड जगत् रज्जुसर्पवत् मिथ्या है इति ॥

अथ चतुर्विंशतितत्त्वोत्पत्तिप्रकारं वक्ष्यामः ॥

टीका:–अब चौविश प्रकारके जो मायाके तत्त्व हैं तिनकी उत्पत्तिकी रीति कहतेहैं इति ॥

ब्रह्माश्रया सत्त्वरजतमगुणात्मिका मायाअस्ति। ततःआकाशः संभूतः।

आकाशाद्वायुः वायोस्तेजः तेजस आपः अद्भ्यः पृथिवी ॥

टीकाः—ब्रह्मके आश्रय, अर्थात् ब्रह्म है आधार जिसका ऐसी सत्वरजतमोगुणस्वरूप माया है, तिसकों साम्य अवस्था कहे सत्त्व, रज, तम, ये तीनि गुण समान एकरूप सो मायाकी प्रथम अवस्था है, इसीकों मूलमाया अरु मूलप्रकृति भी कहतेहैं. अरु सांख्यशास्त्रवाले इसीकों जगतका मूलकारण प्रधान अव्याकृत भी करतेहैं, अरु यही मुख्य मायाका स्वरूप है तिस मायातें प्रथम आकाशकी उत्पत्ति होती भई, आकाशतें वायु, वायूतें तेज कहे अग्नि, अग्नितें जल, जलतें पृथिवी उत्पन्न होती भई इति ॥

एतेषां पंचतत्त्वानां मध्ये आकाशस्य सात्विकांशात् श्रोत्रेंद्रियं संभूतं। वायोः सात्विकांशात् त्वगिंद्रियं

संभूतं । अग्नेःसात्त्विकांशात् चक्षुरिंद्रियं संभूतं । जलस्य सात्त्विकांशात् रसनेंद्रियं संभूतं । पृथिव्याःसात्त्विकांशात् घ्राणेंद्रियं संभूतं । एतेषां पंचतत्त्वानां समष्टिसात्विकांशात् मनोबुद्ध्यहंकारचित्तांतःकरणानि संभूतानि ॥

टीकाः—और इन पांच तत्त्वोंके मध्यमें जो आकाश है तिसके सतोगुणके अंशतें श्रोत्रइंद्रिकी उत्पत्ति होती भई, इसीतरहकी वायूके सतोगुणके अंशतें त्वचाइंद्री उत्पन्न होती भई, और अग्निके सतोगुणके अंशतें चक्षुइंद्रीकी उत्पत्ति होती भई, जलके सतोगुणके अंशतें रसनाइंद्रीकी उत्पत्ति होती भई, पृथिवीके सतोगुणके अंशतें घ्राणइंद्री उत्पन्न होती भई ॥ अरु इन पंचतत्त्वोंके समष्टि कहे सब एकमें मिलिके अर्थात् एकपिंडकरिकें तिसतें मन,

बुद्धि, अहंकार अरु चित्त ये चारिप्रकारकों अंतःकरण उत्पत्ति होते भये इति ॥

संकल्पविकल्पात्मकं मनः । निश्चयात्मिका बुद्धिः । अहंकर्त्ता अहंकारः । चिंतनकर्तृ चित्तं । मनसो देवता चंद्रमा । बुद्धेर्ब्रह्मा अहंकारस्य रुद्रः । चित्तस्य वासुदेवः ॥

टीकाः–सो संकल्पविकल्परूप अर्थात यह करना योग्य है, यह नहीं ऐसे संशयरूपवाला मन कहा जाताहै. निश्चय करनेवाली बुद्धि है, अरु अहंकार करनेवाला अहंकार है, अरु सर्व वस्तुनका चिंतन अर्थात् स्मरण करना वासनारूप चित्त है. मनकी देवता चंद्रमा है, बुद्धिका ब्रह्मा, अहंकारका रुद्र, चित्तकी देवता वासुदेव है. इसप्रकार पांच ज्ञानइंद्री अरु चारि अंतःकरण ये नव पदार्थ सतोगुणके अंशतें उत्पन्न होते भये इति ॥

एतेषा पंचतत्त्वांना मध्ये आकाशस्य राजसांशात् वागिंद्रियं संभूतं । वायोः राजसांशात् पाणिद्रियं संभूतं । वह्नेः राजसांशात् पादेंद्रियं संभूतं। जलस्य राजसांशात् उपस्थेंद्रियं संभूतं। पृथिव्या राजसाशात् गुदेंद्रियं संभूतं । एतेषां समष्टिराजसांशात् पंचप्राणाः संभूताः ॥

टीकाः–और इन पंच तत्त्वोंके मध्य जो आकाश है तिसके रजोगुणके अंशतें वानीइंद्रीकी उत्पत्ति होती भई, वायूके रजोगुण अंशतें हाथ इंद्रीकी उत्पत्ति होती भई, अग्निके रजोगुणके अंशतें पादइंद्रीकी उत्पत्ति होती भई, जलके रजोगुण अंशतें लिंगइंद्रीकी उत्पत्ति होती भई, और पृथिवीके रजोगुण अंशतें गुदाइंद्रीकी उत्पत्ति होती भई, और इन पंचभूतनके समष्टि रजोगुणके अंशनतें पंच प्रा-

ण उत्पन्न होते भये, इसप्रकार पंच कर्मइंद्री अरु पंच प्राण ये दशवस्तु रजोगुणके अंशतें उत्पन्न होती भई इति ॥

एतेषां पंचतत्त्वानां तामसांशात् पंचीकृतपंचतत्त्वानि भवंति। पंचीकरणं कथं इति चेत्। एतेषां पंचमहाभूतानां तामसांशस्वरूपं एकं एकं भूतं द्विधा विभज्य एकं एकमर्धं पृथक् तूष्णीं व्यवस्थाप्य अपरं अपरं अर्धं चतुर्धा विभज्य स्वार्धमन्येषु अर्धेषु स्वभागचतुष्टयं संयोजनं कार्यं। तदा पंचीकरणम् भवति। एतेभ्यः पंचीकृतपंचमहाभूतेभ्यः स्थूलशरीरं भवति। एवं पिंडब्रह्मांडयोरैक्यं संभूतम् ॥

टीकाः—और इन पंचतत्त्वनमें बाकी रहा जो तमोगुणका अंश तिसतें पंचीकृतपंचमहाभूत उत्पन्न होते भये. प्र०—पंचीकरण कैसे होताहै? उ०— ये जो पंचमहाभूत हैं, सो तमोगुणका अंश हैं. सो एक एक भूतके दो दो भाग करिकै एक एकके अर्ध-अर्धभागनकों अलग अलग स्थापन करै ओ अपर अपर कहे एक एक भूतके जो अर्ध अर्ध भाग बाकी रहे तिनके चारि चारि भाग करै फेरि अपने अपने जो अर्ध अर्ध भाग हैं तिनसें अर्ध अर्ध भागनके चारि चारि भागनकों क्रमतें मिलादेवे तो पंचीकरण होताहै. अर्थ यह-एकएकभूतके पंचपंचभाग हो-जाते हैं सो इन पंचीकृत पंचमहाभूतनतें स्थूलशरीर होता है. इस रीतिसें पिंडब्रह्मांडकी एकही प्रकारतें उत्पत्ति होती है. अर्थ यह—पिंड अरु ब्रह्मांडकी उत्पत्तिमें भेद नहीं है. जैसे पंचमहाभूतनतें पिंड उत्पन्न होता है, तैसे ब्रह्मांड उत्पन्न होता है इति ॥

स्थूलशरीराभिमानी जीवनामकं

ब्रह्मप्रतिबिंबं भवति। स एव जीवः प्रकृत्या स्वस्मात् ईश्वरं भिन्नत्वेन जानाति। अविद्योपाधिः सन् आत्मा जीव इत्युच्यते ॥

टीका:—इस वर्तमान स्थूलशरीरका अभिमानी, जीव है नाम जिसका, सो ब्रह्मका प्रतिबिंब, अर्थात् छाया वा तेज है. जैसे जलपूरित घटकेविषे सूर्यका प्रतिबिंब है, सो घटके नाश होनेतें प्रतिबिंब सूर्यरूपताकों प्राप्त होता है, तैसे माया अर्थात् अज्ञानके नाश होनेतें जीव भी ब्रह्मरूपताकों प्राप्त होता है. फेरि बिंबप्रतिबिंबभाव रहता नहीं. सो यह जीव प्रकृति कहे मायाके आधीनतातें अर्थात् मायाके वशीभूत है, तातें अपनेकों ईश्वरतें भिन्न जानता है. तात्पर्य यह—मायाके कार्य जो हैं स्थूल सूक्ष्म शरीर दो, तिनके वशीभूत अर्थात् एकरूपताके होनेतें दुग्धजलवत् अभेद विषयभोगनके

कहे विषयानंदसुखकी इच्छाकरिकै नाना प्रकारके कर्मनकों करता है, अरु तिनके फल स्वर्गनरकादिके सुखदुःख भोगनकों भोगता है. जो अविद्याकी उपाधिवाला है, तिसका नाम जीव आत्मा है. तहां जो रजोगुण और तमोगुणकों सत्त्वगुण दबाए हुए हैं, तिनतें आप दबता नहीं, सो शुद्ध सतोगुण अरु माया कहा जाता है, अरु जो सतोगुण रज तम गुणनकरिकै आप दबा हुवा है, तिनके दबानेकों सामर्थ्य है नहीं, सो अशुद्धसत्त्व अविद्या कहा जाता है, तिसका नाम अज्ञान कहा जाता है. तहां अविद्याकी उपाधिवाला अर्थात् अविद्याकरिकै आवृत कहे ढंका हुवा आत्मा स्थूलशरीरका अभिमानी, तिसका नाम जीव है. तात्पर्य यह—अविद्याकेविषे जो ब्रह्मका प्रतिबिंब परता है, तिसका नाम जीव है ॥

मायोपाधिः सन् ईश्वर इत्युच्यते । एवं उपाधिभेदाज्जीवेश्वरभेदद-

ष्टिर्यावत्पर्यंतं तिष्ठति तावत्पर्यंतं जन्ममरणादिरूपसंसारो न. निवर्त्तते तस्मात्कारणान्न जीवेश्वरयोर्भेदबुद्धिः स्वीकार्या ॥

टीकाः—और मायाकी उपाधि कहे माया-विषे जो ब्रह्मका प्रतिबिंब परता है तिसका नाम ईश्वर जगत्कर्ता है. वास्तव परमात्मा जो है ब्रह्म सो जीवईश्वरउपाधीतें रहित शुद्धचैतन्य अपनी महिमाविषे स्थित है. एवं कहे इस प्रकार उपाधिभेदकरिके जबतक पुरुषकी ईश्वरजीवविषे भेदबुद्धि रहेगी, तबतक जन्ममृत्युरूप संसारकी निवृत्ति नहीं होवैगी. तिस कारणतें जीवईश्वरमें भेदबुद्धीका अंगीकार कदापि करना नहीं चाहिये इति ॥

ननु साहंकारस्य किंचिज्ज्ञस्य जीवस्य निरहंकारस्य सर्वज्ञस्येश्वरस्य तत्त्वमसीति महावाक्यात् कथमभेद-

बुद्धिः स्यादुभयोः विरुद्धधर्माक्रांतत्वात् ॥

टीका—शंका, साहंकार कहे देह अहंकारसहित जो अल्पज्ञ जीव है और निरहंकार कहे देहाहंकाररहित जो सर्वज्ञ ईश्वर है, तिन दोनोंकी एकता तत्त्वमसि महावाक्यकरिके जो तुम कहते हौ, सो अयुक्त है, काहेतें तम प्रकाश, अथवा अंधकार सूर्यकी तरह कैसे अभेदबुद्धि करै, यह तौ महाविरोध प्रतीत होता है इति ॥

इतिचेन्न स्थूलसूक्ष्मशरीराभिमानी त्वंपदवाच्यार्थं उपाधिविनिर्मुक्तं समाधिदशासंपन्नं शुद्धं चैतन्यं त्वंपदलक्ष्यार्थः ॥

टीका—उ०—ऐसा नहीं कहै, ऐसा जो तूं विरुद्ध धर्म जीवईश्वरविषे कहता है, सो यथार्थ है, परंतु उपाधिकरिके जीवईश्वरविषे विरुद्धधर्म प्र-

तीत होता है, वास्तव भेद कोई है नहीं. अब जीवई-श्वरकी एकतासिद्धिके अर्थ तत्त्वमसि महावाक्यका संक्षेपसें अर्थ कहते हैं तहां तत्त्वमसि महावाक्यके तीनि पद हैं, तत् त्वं असि; तत् कहे तौन जगत्कर्ता जो सर्वज्ञ ईश्वर है सो, त्वं कहे तुं, असि कहे है, अर्थात् तौन जगत्कर्त्ता ईश्वर तुं है, यह तत्त्वमसि महावाक्यका सामान्य अर्थ है. अब विशेष्य अर्थकों कहते हैं. तहां तत्पदके दो अर्थ होते हैं एक वाच्य, दूसरा लक्ष्य, इसी तरह त्वंपदके भी दो अर्थ होते हैं. जैसे घटपदका वाच्य अर्थ घटका गोलाकार रूप है, अरु घटका मूलकारण लक्ष्य मृत्तिका है, इसी प्रकार माया और अविद्या-संबंधवाला तत्पद अरु त्वंपदका वाच्य अर्थ है, अरु माया अविद्यासंबंधरहित शुद्ध चैतन्य ब्रह्म दोऊ पदनका लक्ष्य अर्थ होता है, तहां स्थूल, सूक्ष्म शरीर दोनोंका अभिमानी त्वंपदका वाच्य अर्थ है, और उपाधिविनिर्मुक्त कहे उपाधियोंतें रहित स-

·माधिदशासंपन्न कहे समाधिअवस्थामें प्राप्त अथवा सुषुप्तिअवस्थाविषे शुद्धचैतन्य त्वंपदका लक्ष्य अर्थ है इति ॥

एवं सर्वज्ञत्वादिविशिष्ट ईश्वरः तत्पदवाच्यार्थः ॥ उपाधिशून्यं शुद्धचैतन्यं तत्पदलक्ष्यार्थः ॥ एवं च जीवेश्वरयोः चैतन्यरूपेणाऽभेदे बाधकाभावः ॥

टीका—इसी तरह सर्वज्ञत्वादिविशिष्ट कहे सर्वज्ञतादि विशेषणसहित ईश्वर तत्पदका वाच्य अर्थ है, और उपाधिशून्य कहे सर्वज्ञतादि विशेषणरहित शुद्धचैतन्य तत्पदका लक्ष्य अर्थ है. एवं कहे इसप्रकार जीवईश्वरका चैतन्यरूपकरिके अभेदबाधाका अभावहै. अर्थ यह, चैतन्यरूपमें अभेदकी बाधा कोई है नहीं. तात्पर्य यह स्वरूपकरिके जीवईश्वर अभेद है, भेद नहीं है ॥

एवं च वेदातवाक्यैः सद्गुरूपदेशेन च सर्वेष्वपि भूतेषु येषां ब्रह्मबुद्धिरुत्पन्ना ते जीवन्मुक्ता इत्यर्थः ॥

टीकाः—एवं कहे इस रीतिसें वेदांतवाक्यनकरिकै सद्गुरूके उपदेशतें सर्व भूतनकेविषे जिस पुरुपनकी ब्रह्मबुद्धि उत्पन्न होती है, अर्थात् शुद्धसचिदानंदस्वरूप ब्रह्म मैं हूं, ऐसी निश्चय जिन पुरुषोंकों होती है, ते जीवन्मुक्त हैं, यह अर्थ है ॥

ननु जीवन्मुक्तः कः? यथा देहोऽहं पुरुषोऽहं ब्राह्मणोऽहं शूद्रोऽहमस्मीति दृढनिश्चयस्तथा नाहं ब्राह्मणः न शूद्रः न पुरुषः किंतु असंगः सच्चिदानंदस्वरूपः प्रकाशरूपः सर्वांतर्यामी चिदाकाशरूपोऽस्मीति दृढनिश्चयरूपाऽपरोक्षज्ञानवान् जीवन्मुक्तः

टीकाः—जीवन्मुक्त किसकों कहते हैं? उ०—यथेति जैसे मैं देह हूं, मैं पुरुष हूं, मैं ब्राह्मण हूं, मैं शूद्र हूं, ऐसी जो पुरुषकों मनुष्य अथवा जीवभावकी दृढ निश्चय है, तैसे मैं देह नहीं, ब्राह्मण नहीं, शूद्र नहीं, पुरुष नहीं, किंतु कहे कौन हूं, असंगः कहे देहआदि, प्रपंचसंघात कहे समूहतें मैं असंग अर्थात् संगरहित भिन्न हूं, और मैं सच्चिदानंदस्वरूप हूं और स्वप्रकाश कहे अपने प्रकाशकरिके प्रकाशमान हूं, अर्थ यह, सूर्यादिवत् परप्रकाश नहीं और सर्वभूतनविषे अंतरजामी कहे अंतःकरणविषे सर्व देहइंद्रियादिकनका प्रेरक अरु नियंता कहे अधिष्ठान, सर्वके जाननेवाला साक्षी हूं, और चिदाकाशरूप कहे चैतन्यरूप आकाश सर्वभूतनके बाहर भीतर असंग सर्वसें निर्लिप्तव्यापक हूं ऐसे दृढरूप अपरोक्ष कहे साक्षात्कार ज्ञानवानकों जीवन्मुक्त कहते हैं यह अर्थ है ॥

ब्रह्मैवाहमस्मीत्यपरोक्षज्ञानेन निखि-

लकर्मबंधविनिर्मुक्तः स्यात् ॥ कर्माणि कतिविधानि संतीति चेत् आगामिसंचितप्रारब्धभेदेनत्रिविधानि संति॥

टीकाः-ब्रह्मैवाहं कहे मैं सच्चिदानंदब्रह्म हूं, ऐसे अपरोक्षज्ञानकरिके निखिल कहे संपूर्ण कर्मनके बंधनोंतें पुरुष निर्मुक्त कहे छूटि जाते हैं. प्रश्न—कर्माणीति. कर्म के प्रकारके होते हैं? उ०—आगामि, संचित और प्रारब्ध. भेदकरिके तीनि प्रकारके कर्म होते हैं इति ॥

ज्ञानोत्पत्त्यनंतरं ज्ञानिदेहकृतं पुण्यपापरूपं कर्म यदस्ति तदागामीत्यभिधीयते ॥

टीकाः—तहां ज्ञानोत्पत्ति कहे ज्ञानउत्पत्ति होनेके अनंतर कहे पीछे ज्ञानी जो जो कर्म देहकरिके पुण्यपापरूप करते हैं, सो आगामि कर्म हैं ॥

संचितं कर्म किम् । अनंतकोटिजन्मानां बीजभूतं सत् यत्कर्म जातं पूर्वार्जितं तिष्ठति तत्संचितं ज्ञेयम् ॥

टीका:-प्र०-संचित कर्म किसकों कहते हैं? उ०-अनंतकोटि कहे संख्यातें रहित कोटिजन्मोंविषे जो पुण्यपापरूप कर्म संसारकेविषे जन्ममृत्यु होनेके बीजरूप सो जो जो कर्म हैं पूर्वजन्मके उत्पत्ति करे हुये तिष्ठति कहे स्थित है, तिनकों संचित कर्म कहते हैं. संचित कहे इकठा करना खजानारूप जमा हैं इति ॥

प्रारब्धकर्म किमिति चेत् । इदं शरीरमुत्पाद्य इह लोके एवं सुखदुःखादिप्रदं यत्कर्म तत्प्रारब्धं भोगेन नष्टं भवति प्रारब्धकर्मणां भोगादेव क्षय इति ॥

टीकाः-प्र०-प्रारब्ध कर्म किसकों कहतेहैं? उ०-उत्पाद्य कहे उत्पत्ति भया जो यह वर्त्तमान स्थूलशरीर पूर्वजन्मके करे हुये पुण्यपापरूप कर्म, तिनके फल सुखदुःखादि अनेक प्रकारके भोग इस संसारमें सुखदुःखादिप्रद कहे देनेवाला जो है यह स्थूलशरीर अथवा इस वर्त्तमानशरीरके जो हैं सुख-दुःखभोग, तिनका नाम प्रारब्धकर्म है, सो यह प्राप्त जो वर्त्तमानशरीर है और तिसविषे प्राप्त जो सुखदुःखादिभोग हैं, सो भोगनेतें नष्ट होतेहैं. तिनके नष्ट होनेतें प्रारब्धकर्मभी नष्ट होजाते हैं. तात्पर्य यह, स्थूलशरीरही प्रारब्धकर्म है, तिसके नाश होनेतें प्रारब्धकर्मनकीभी नाश होजाती है, काहेतें प्रारब्धकर्मनकी भोगहीतें नाश होता है, तात्पर्य यह, विनाभोगे संसारविषे और कोई तिनके नाश करनेका उपाऊ है नहीं, यह अर्थ है. तहांश्लोक "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि" टीका-पूर्वजन्मविषे

जो करा है शुभ अथवा अशुभ कर्म तिनके फल अवश्य भोगने परेंगे, विना भोगे जो कोटिनजन्म तक कोई जतन करे तौभी तिनकी नाश नहीं होगी, बनेही रहेंगे इति ॥

संचितं कर्म ब्रह्मैवाहमिति निश्चयात्मकज्ञानेन नश्यति। आगामि कर्मापि ज्ञानेन नश्यति। किंच आगामि कर्मणां नलिनीदलगतजलवत् ज्ञानिनां संबंधो नास्ति ॥

टीकाः—और संचित कर्म जो हैं अनंतकोटिजन्मनके बीजरूप सो मैं सच्चिदानंद ब्रह्म हूं ऐसे दृढ आत्मज्ञानके निश्चय होनेतें नाश हो जाते हैं, और आगामि कर्मनकी भी ज्ञानतें ही नाश होजाती है. किंच कहे काहेतें आगामि कर्मनका नलिनीदलगतजलवत् कहे जैसे नलिनी जो है कमलके दल कहे पत्र सो नित्य जलकेविषे रहते

हैं, परंतु तिनकों जलका संबंध है नहीं. अर्थात् जलतें जुदा सुभाववाले हैं. तैसे ज्ञानीके देहकरिकै पुण्यपापरूप कर्म होते हैं, तिनका संबंध ज्ञानीतें है नहीं. तात्पर्य यह, ज्ञानी अपने स्वरूपकों देहतें भिन्न मानता है, जातें देहसंबंधी पुण्यपापरूप कर्म ज्ञानीकों स्पर्श नहीं होते. जैसे असंग आकाशकों जगतके कर्म स्पर्श नहीं करते इति ॥

किंच ये ज्ञानिनं स्तुवंति भजंति अर्चयंति तान्प्रति ज्ञानिकृतं आगामि पुण्यं गच्छति । ये ज्ञानिनं निंदंति द्विषंति दुःखप्रदानं कुर्वंति तान्प्रति ज्ञानिकृतं सर्वं आगामि क्रियमाणं यदवाच्यं कर्म पापात्मकं तद्गच्छति ॥

टीकाः—काहेतें जो पुरुष ज्ञानीकी स्तुति प्रशंसा करते हैं, और भजंति कहे पूजादि मा-

न, सेवा, चाकरी करते हैं, तिनकों ज्ञानीकी करी हुई आगामी पुण्य मिलती है, और जो ज्ञानीकी निंदा करतें हैं और शत्रुभावकरिके नाना प्रकारके दुःखनकों देते हैं, तिनकों ज्ञानीके करे हुये जो पापरूप आगामी कर्म हैं, सो प्राप्त होते हैं. तात्पर्य यह, जबतक ज्ञानीका शरीर रहेगा तबतक पुण्यपाप अवश्य होएंगे, तिनके फल ज्ञानीकों भोगने नहीं परेंगे. काहेतें ज्ञानीकी जो आगामी पुण्य है, सो ज्ञानीके भक्तोंकों मिलती है, और जो ज्ञानीतें शत्रुभाव रखते है, तिनकों ज्ञानीके करे हुये पाप मिलते हैं. ज्ञानी पुण्यपापतें भिन्न है, ऐसे श्रुतिभी कहती है. तथा च श्रुतिः "सुहृदः पुण्यकृत्यान् द्विषन्तः पापकृत्यान् गृह्णंति" इति श्रुतेः॥

तथा चात्मवित्संसारं तीर्त्वा ब्रह्मानंदं इहैव प्राप्नोति। तरति शोकमात्मविदिति श्रुतेः॥

टीकाः—तथा कहे तैसे आत्मवित् कहे आत्मवेत्ता अर्थात् आत्मस्वरूपके जाननेवाले पुरुष संसारं तीर्त्वा कहे तरि जाते हैं. तात्पर्य यह तिन पुरुषनका जन्ममृत्युरूप संसार नष्ट हो जाता है, सो पुरुष अवश्य ब्रह्मानंदको प्राप्त होते हैं, और नानाप्रकारके शोकमोहादिकतें रहित हो जाते हैं ऐसे श्रुति कहती है. यह अर्थ है इति ॥

तनुं त्यजतु वा काश्यां श्वपचस्य गृहेऽथवा ॥ ज्ञानसंप्राप्तिसमये मुक्तोऽसौ विगताशयः इति स्मृतेश्च ॥

इति तत्त्वबोधप्रकरणं समाप्तम् ॥

टीकाः—आत्मवेत्ता जो है,सो प्रारब्धकर्मनके समाप्त भये पीछे शरीरको चाहे तो काशीजीमें त्याग करे, चाहे श्वपच कहे मेहतरके घरमें त्यागकरै परंतु ज्ञानप्राप्तिकालमें यह जो है विगताशय कहे गत होगई है त्रिलोकीके विषयभोगनतें इच्छा जि-

सकी अर्थात् त्रिलोककी संपदाकों स्वान और काककी विष्ठावत् त्याग वा तुच्छ माना है, जिसनें ऐसा विरक्त पुरुष तीक्ष्ण वैराग्यवाला आत्मज्ञानी सर्वकालविषे मुक्त है, तिसकेलिये देश काल वस्तुका नेम है नहीं, ऐसे स्मृति भी कहती है ॥

इति श्रीमन्माधवानंदपरमहंसपारिव्राजविरचिता तत्त्वबोधप्रकरणकी सुबोधिनीभाषाटीका समाप्ता ॥ शुभं भवतु ॥

संस्कृत पुस्तकें विक्रीस तयार.

पुस्तक	किंमत
अष्टाध्यायीसूत्रपाठः.	कि. १ आ. ट. ॥ आ.
अन्नंभट्टकृत तर्कसंग्रह व दीपिका.	कि. ६ आ. ट. १ आ.
अवधूतगीता. साधी.	कि. २॥ आ. ट. ॥ आ.
अवधूतगीता रेशमी.	कि. ५ आ. ट. ॥ आ.
इसापनीतिकथा (दोन भाग) प्रत्येकी.	कि. ६ आ. ट. ॥ आ.
उदासीनसाधुस्तोत्र.	कि. ५ आ. ट. ॥ आ.
कालिदासकृत रघुवंश सटीक...	कि. २ रु. ट. ३॥ आ.
,, किता, बारीक टैपाचा.	कि. १ रु. ट. २ आ.
कालिदासकृत कुमारसंभव काव्य.	कि. २ रु. ट. ३॥ आ.
कालिदासकृत मेघदूत काव्य...	कि. ८ आ. ट. १ आ.
,, इंग्रजी टिप्पणी स०...	कि. १२ आ. ट. २ आ.
कालिदासकृत ऋतुसंहार काव्य.	कि. ६ आ. ट. १ आ.
,, केवळ टीकेसहित.	कि. ४ आ. ट. १ आ.
कालिदासकृतअभिज्ञानशाकुन्तल नाटक...	कि. २ रु. ट. ३॥ आ.
,, बारीक टैपाचें.	कि. १। रु. ट. १॥ आ.
कृष्णसहस्रनाम.	कि. २ आ. ट. ॥ आ.
गणेशसहस्रनामावळी.	कि. २॥ आ. ट. ॥ आ.
गणेशगीता. साधी....	कि. ३॥ आ. ट. १ आ.
गणेशगीता रेशमी पुठ्याची.	कि. ३॥ आ. ट. १ आ.
गीता ठळक टैपाची.	कि. १ रु. ट. १॥ आ.
गोपालसहस्रनाम. रेशमी.	कि. ४॥ आ. ट. ॥ आ.
गोपालसहस्रनाम साधें.	कि. २। आ. ट. ॥ आ.
तुळसीमाहात्म्य.	कि. ॥ आ. ट. ॥ आ.
दण्डिकृत दशकुमारचरित्र.	कि. १॥ रु. ट. २ आ.
दत्तात्रयनामावळी....	कि. २ आ. ट. ॥ आ.

दुर्गास्तोत्र. ... ... कि. १ आ. ट. ॥ आ.
देवीसहस्रनामावळी. ... ... कि. १॥ आ ट. ॥ आ.
ज्योतिर्लिंगमानसपूजास्तोत्र. ... ... कि. ॥ आ. ट. ॥ आ.
नलचंपू... ... ... कि. २ रु. ट. ४ आ.
हितोपदेश इंग्रजी टिप्पणीसह... ... कि. १ रु. ट. १ आ.
हितोपदेश साधा. ... ... कि. ८ आ. ट. १ आ.
पंचरत्नगीता. ... ... कि. १रु. ६ आ ट. २ आ.
„ फार बारीक टैपाची.... ... कि. ७ आ. ट. १ आ.
प्रश्नोत्तरपयोनिधि. ... ... कि. ४ आ. ट. १ आ.
प्रातःस्मरण. ... ... कि. १ आ. ट. ॥ आ.
ब्रह्मनामावळी. ... ... कि. ०। आ. ट. ॥ आ.
भट्टिकाव्य. ... ... कि. ३ रु. ट. ३॥ आ.
भारविकृत किरातार्जुनीय. ... ... कि. २॥ रु. ट. ४ आ.
मनुस्मृति. ... ... कि. ३॥ रु. ट. ४॥ आ.
रत्नसमुच्चय. ... ... कि. २ आ. ट. ॥ आ.
रसिकाष्टक. ... ... कि. ॥ आ. ट. ॥ आ.
रामगीता मूळ. ... ... कि. ॥। आ. ट. ॥ आ.
रामचंद्रिका संस्कृत शब्दरूप ... ... कि. ४ आ. ट. ॥ आ.
रामरक्षा. ... ... कि. ॥ आ. ट. ॥ आ.
लघुकौमुदी. ... ... कि. ४ आ. ट. १ आ.
लक्ष्मीस्तोत्र. ... ... कि. ॥ आ. ट. ॥ आ.
लौगाक्षिभास्करविरचित तर्ककौमुदी. ... कि. २ आ. ट. ॥ आ.
विदुरनीति. ... ... कि. ६ आ. ट. ॥ आ.
विद्यारण्यस्वामिकृत अनुभूतिप्रकाश. ... कि. २। रु. ट. ॥ आ.
विष्णुसहस्रनाम. ... ... कि. १ आ. ट. ॥ आ.
विष्णुसहस्रनाम रेशमी. ... ... कि. ३॥ आ. ट. ॥ आ.